सुनि आस प्यास तेरी प्रबल, तू अति अद्भुत गति रहत ।
इहि भाँति नचायो मोहि, अब और कहा करिबो चहत ॥६॥

6. I tolerated the jokes of evil-minded persons some how or other in my efforts to please them and while trying to stop my tears, I smiled at heart with an extremely desolate heart and even clasped my hands in feigned satisfaction before these sneering persons while trying hard to control the indignation of my heart. Wilt thou, O delusive Hope, make me dance still further ?

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥७॥

सूर्यके उदय और अस्तके साथ मनुष्यों की ज़िन्दगी रोज़ घटती जाती है। समय भागा जाता है, पर कारोबारों में मशगूल रहने के कारण वह भागता हुआ नहीं दीखता। लोगोंको पैदा होते, बूढ़े होते, विपत्ति ग्रसित होते और मरते देखकर भी मनमें भय नहीं होता। इससे मालूम होता है, मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा (शराब) के नशेमें संसार मतवाला हो रहा है ॥७॥

सचित्र

भर्तृहरि कृत

वैराग्यशतक

हरिदास वैद्य

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

२०१ हरीसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित

अप्रेल १९२० ई०

[[illegible] बार १०००] [मूल [illegible] २॥)

छप्पय।

उदै अस्त रवि होत, आयु को क्षीन करत नित।
गृह धन्धे के माहिं, समय बीतत अजान चित।
आँखिन देखत जन्म, जरा अरु विपति मरण नित।
तऊ डरत नहिं नेक, शंकहु नाहिं करत चित।
जग जीव मोह मदिरा पिए, छके फिरत प्रमाद में।
गिर परत उठव फिर फिर गिरत, विषय वासना स्वाद में॥७॥

7. Along with the rising and setting of the Sun, one's life is being daily exhausted. The Flight of Time is not perceived owing to the heavy transaction of business absorbing all attention. O even the phenomena of birth, old age, distress and death do not strike terror into heart of man. It seems the head of the world has been turned by drinking the intoxicating wine of carelessness.

दारा दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी॥
याच्ञाभंगभयेन गद्गदलसत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः॥८॥

सुन्दर क्यू विश्वास न राखत ।
सो प्रभु विश्व भरे सब ही को ॥ १ ॥

खेचर भूचर जे जलके चर ।
देत आहार चराचर पोषै ॥
वे हरि जो सब कूँ प्रतिपालत ।
ज्यूँ जिहि भाँति तिसी विधि तोषै ॥
तू अब क्यू विश्वास न राखत ।
भूलत है कित धोखहि धोखे ॥
तोहि तहाँ पहुँचाय रहै प्रभु ।
सुन्दर बैठि रहै किन ओखै ॥

छप्पय ।

बैठ पौरिया द्वार, छड़ीकर पहरौ राखत ।
सोवत स्वामि हमार, जाहु तुम ऐसे भाषत ।
करि हैं क्रोध अपार, लखैं जो तुमको द्वारे ।
जाहु विश्वपति द्वार, तहाँ नहिं रोकन हारे ।
जहँ निर्दय कटुवादी नहीं, अवाशि तहाँ चालिजाइए ।
वहँ निर्भय ब्रह्मानँद सुख, ब्रह्मानँद तहँ पाइये ॥९७॥

97. O mind, leaving dependence on those at whose doors such answers are heard, as, "It is not the proper time for you to

भूमिका।

सन् १८१५ ई० में, हमारे यहाँ से महाराजा भर्तृहरिके "नीतिशतक" का अनुवाद छप कर प्रकाशित हुआ था। तभी से हमारी इच्छा थी, कि "वैराग्यशतक" का भी अनुवाद प्रकाशित किया जाय। इसके अनुवादके लिए हमने कई योग्य विद्वानों से लिखा-पढ़ीकी, किन्तु वादा करनेपर भी गत मार्च तक किसी विद्वान् सज्जन ने कृपा नहीं की। उधर हमारे प्रेमी ग्राहकों ने इस के लिए तकाज़े करने शुरू किये; तब हमने "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः" के न्यायानुसार इसके अनुवाद करनेका स्वयं साहस किया। यद्यपि हम स्वयं अच्छी तरह जानते हैं, कि हम न तो किसी भाषाके विद्वान् हैं और न हिन्दीके कोई नामी गिरामी लेखक हैं; पर सर्वसाधारण हमारी लिखी पुस्तकों की भाषा और शैली को पसन्द करते हैं, हमारी लिखी पुस्तकों को चाह से खरीदते हैं, इसी बल-भरोसे पर हमने बौने की तरह

see the master of the house, as he likes to be alone now, or is asleep, and if he happens to find you standing here, he will be offended," etc., do thou take thy shelter in the mansion of the Lord of the universe at Whose doors there is no sentinel, where no unsympathetic and harsh words are heard and who is the Giver of eternal happiness.

प्रिय सखि विपद्दण्डव्रातप्रताप परम्परा-
तिपरिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ॥
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालव-
द्भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥ ८८ ॥

हे प्यारी सखी बुद्धि ! कुम्हार जिस तरह गीली मिट्टीके लौंदेको चाकपर चढ़ाकर डंडेसे चाकको बारंबार घुमाता है और उस से इच्छानुसार बर्तन तैयार करता है, उसी तरह संसारको गढ़नेवाला ब्रह्मा हमारे चित्तको चिन्ताके चाकपर चढ़ाकर, विपत्तियोंके डण्डे से चाकको लगातार घुमाता हुआ, हमारा क्या करना चाहता है, यह हमारी समझमें नहीं आता ? ॥८८॥

मनुष्यके पीछे भगवान्‌ने चिन्ता बुरी लगा दी है। कारण यह है, कि मनुष्यके पूर्व जन्मके कर्मोंके कारण

चाँदको छूने का प्रयास किया है। कह नहीं सकते हमें कहाँ तक सफलता हुई है। संभव है, इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गई हों, क्योंकि हमने यह काम कारणवश बहुत ही जल्दीमें—कोई दो सप्ताहमें ही शेष किया है।

यह कहने की ज़रूरत नहीं, कि महाराज भर्तृहरि के प्रत्येक शतक (नीति, शृङ्गार और वैराग्य) का का प्रत्येक श्लोक लाख-लाख रुपयों के लिए भी सस्ता है। आपके पदोंका मनुष्य के दिल पर जैसी जल्दी असर होता है औरों के पदोंका वैसा नहीं होता। पढ़ने और समझनेवाले को जो मज़ा आता है, वह कह कर और लिखकर बताया जा नहीं सकता। उस मज़े को दिल ही जानता है। दुःख है, कि दिलके ज़बान नहीं और ज़बान के दिल नहीं। प्रत्येक पढ़े-लिखे सज्जन इस "वैराग्य शतक" को रोज़-रोज़ या हफ़ते में एक वार अवश्य देखा करें, ताकि इस मिथ्या जगत् की असारता को समझें, विषय-वासनाओं को त्यागें, परोपकार में मन लगावें और अपनी आगेकी लम्बी सफ़रका सामान करें अथवा परमात्माकी निष्काम भक्ति करते हुए पर मोक्ष-प्राप्ति की चेष्टा करें।

वैराग्य शतकके बहुत से हिन्दी अनुवाद सो पर उनके अनुवादकोंने यथेष्ट कष्ट नहीं उठाया; इस-लिए प्रत्येक थोड़ा पढ़ा-लिखा इस रूखे वेदान्त-विषयको

दिल चलाकर भी समझ नहीं सकता। थोड़े पढ़े-लिखे सज्जन भी इस मोक्षको राह दिखाने वाले विषयको समझें और लाभ उठावें, इसी ग़रज़से यह अनुवाद किया गया है। इसी से इसकी भाषा, जहाँ तक हो सका है, खूब ही सरल रक्खी गई है। शब्दार्थ पर ध्यान न देकर, भावार्थपर ध्यान दिया गया है। सरलताके लिये ही पूरी स्वतन्त्रता से काम लिया गया है।

आरम्भमें मूल श्लोक, उसके नीचे भावार्थ, भावार्थके नीचे व्याख्या, व्याख्याके अन्तमें महाराज श्रीप्रताप सिंह जूकी चित्ताकर्षिणी कविताएँ और शेषमें अँगरेज़ी अनुवाद दिया गया है। भावार्थ, कविता और अङ्ग-रेज़ी अनुवादके साथ मूल श्लोकोंके नम्बर दिये गये हैं। व्याख्याके साथ की कविताओंके साथ नम्बर नहीं दिये गये हैं, क्योंकि वे वैराग्य शतकके मूल श्लोकों के भाव को अक्षर-अक्षर द्योतक नहीं। वे तो पाठकों की दिल-चस्पीके लिए व्याख्याके साथ दे दी गई हैं। जहाँ तक हो सका है, व्याख्याओंके साथ उपयुक्त कविता ही दी गई हैं। आशा है, वे अधिकांश पाठकों को रोचक मालूम होंगी।

इस पुस्तकके तैयार करनेमें "तुलसी सतसई," "सुन्दर विलास," "कबीर की साखी" प्रभृति ग्रन्थोंके सिवा "उस्ताद ज़ौक़," "महाकवि दाग़" और "महाकवि

ग़ालिब" से भी मौक़े-मौक़े की कविताएँ ली गई' हैं; उनके लिए हम पूज्यपाद विद्वद्वर श्रीमान् पण्डित ज्वालादत्त जी शर्म्मा, सम्पादक "प्रतिभा" के बहुत आभारी हैं।

इस पुस्तक की तैयारीमें हमारे एक मित्र महाशयने कम-से-कम चौथे हिस्से का काम किया है। हम उनका नाम देना चाहते थे। इसके लिए हमने उन्हें लिखा भी, पर वे इससे असन्तुष्ट होते हुए मालूम हुए, इसलिए उनका नाम भूमिका में नहीं लिखा गया है। उनके सिवा हमारे विद्वान् मित्र बाबू छोगमल जी चोपड़ा बी० ए०, बी० एल० वकील, स्माल काज़ कोर्ट ने भी हमें बहुत कुछ सहायता दी है, इसलिए हम वकील साहब के अतीव कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तकमें, इस काग़ज़ के दुर्भिक्ष के समय, ख़ासी रक़म लगाकर प्राय: २० हाफटोन चित्र मौक़े-मौक़े पर सजा दिये गये हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी सज्[illegible] हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर हमें उ[illegible] करेंगे, जिससे हम भविष्य में औरभी अ[illegible] मातृभाषाकी सेवा कर सकें।

विनीत-

PREFACE.

In 1915, a translation of **Nitishatak** of Maharaja Bhatri Hari was published by my firm well-known as Haridas & Co. I had an intense desire thenceforward, to publish a translation of **Vairagya Shatak** also. I wrote to several well-known scholars but up to March last no one favoured me with a promise to take up the work. In the meantime my worthy customers began to send me repeated reminders and demands for the new book. Finally I ventured to translate it myself, as it was better to do something than nothing. I know very well that I am not scholar in any language nor am I well-known Hindi writer, but the public like the style and language of the books written by me with keenness. This was my only consideration to take up this bold undertaking, although it is like that of a dwarf trying to reach the moon. I do not know how far I have been successful. It is quite possible that there are many short-comings and defects, because I had to do this hurriedly—in fact within the short space of about two weeks.

It is perhaps superfluous to add that every one of the slokas of the Niti, Vairagya and Shringar Shatakas, compiled by **Maharaja Bhatrihari** is worth lacs of Rupees. His slokas have a peculiar charm which no other author's slokas have. It is impossible to describe the unspeakable pleasure

it produces in the minds of its readers. The pleasu can better be imagined than described. I reque: every literate person to read it once or twice ever week, so that he may think about the transitoriness of the world, and give up worldly desires and may fix his mind in the meditation of the Supreme Being and may devote his life and time in philanthropic and benevolent works

There are lots of translations of **Vairagya Shatak**, but the translators seem not to have taken sufficient pains to explain the deep philosophy underlying its slokas. The present work has been undertaken with the sole object of making it easy to be understood by ordinary literate people and hence it is that its language has been made as easy as possible. The purport has been taken into consideration and not the meanings of the words only and in order to make it as easy as possible, free translation has been made and not literal.

First the original sloka has been put, then the purport and after that the soul-enchanting verses of Shri Maharaja Pratap Singhjoo and last of the English translation has been put in. The purport verses and English translation all have been numbere as per the original slokas. But in the verses appea ing in the explanatory notes no number has bee given, because those verses do not give the purport c the original slokas of the **Vairagya Shataka** They have been put in along with the notes, simply to cheer the readers and it is hoped they will offer a pleasant reading to the reader.

In the preparation of this book much help has been taken from Tulsi Satsai, Sunder Bilas, Kabir's Sakhi. Occasional quotations have also been made from "Ustad Zauq" "Dagh the great poet" and Ghalib the great poet. For these quotations I am much indebted to my venerable friend and scholar Pandit Jwala dutta Sharma, Editor "The Pratibha."

I received much assistance from a friend of mine in its preparation. I wanted to disclose his name and wrote for permission, but he seemed to be quite unwilling to consent and it is with regret that I can not publish his name here.

I am also highly thankful to my esteemed friend Babu Chhogmal ji Chopra, B. A., B. L., pleader Small Causes Court, Calcutta for the assistance he gave me from time to time in this connection.

About 20 half-tone pictures have been put in at the proper place at considerable expense and that at a time when there is a famine of printing papers.

I trust that my esteemed friends and admirers would overlook my mistakes and defects and give me encouragement in my present enterprise, so that I may in future serve my mother-tongue more cheerfully and successfully.

CALCUTTA,
The 15th April, 1920

HARIDASS VAIDYA.

चित्र-सूची ।

॥ श्रीः ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ॥
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

जो दशों दिशाओं और तीनों कालोंमें परिपूर्ण है, जो अनन्त है, जो चैतन्य-स्वरूप है, जो अपने ही अनुभव से जाना जा सकता है, जो शान्त और तेजोमय है, ऐसे ब्रह्मरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

जो परमेश्वर पूरब पच्छिम प्रभृति दशों दिशाओं, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल,—इन से संकुचित नहीं है; यानी जो सब दिशाओं और तीनों कालोंमें मौजूद रहता है, किसी दिशा और किसी काल की क़ैद

में नहीं है, जो तीनों लोक और चौदहों भुवनोंमें व्याप रहा है, जो पहले भी था, अब भी है और आगे आने वाले समयमें भी रहेगा, इसलिए वह अनन्त है, उसका विनाश नहीं है, वह चैतन्य स्वरूप है, वह केवल अपने को अनुभवसे जाना जा सकता है, वह परम शान्त और तेजोरूप है, उसी को मैं वन्दना करता हूँ।

1. To One unlimited by time or space, to the Boundless, to Him who is all consciousness, to One who is know-able only by self-contemplation and to the supreme Peace and Light I bow down in prayer.

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ॥
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ॥ २ ॥

जो विद्वान् हैं वें ईर्षा से भरे हुए हैं, जो धनवान हैं उनको अपने धन का गर्व है, इनके सिवा जो और लोग हैं वे अज्ञानी हैं; इसलिए विद्वत्तापूर्ण विचार, सुन्दर-सुन्दर सारगर्भित निवन्ध या उत्तम काव्य शरीर में ही नाश होजाते हैं ॥ २ ॥

जो विद्वान हैं, जो पण्डित हैं, जिन्हें अच्छे और बुरे का ज्ञान है, वे लोग तो अपनी विद्याके अभिमानमें मत-वाले हो रहे हैं, वे लोग अपने सिवा किसी को विद्वान् नहीं समझते: समझते हैं कि हमारे सिवा और सब

मूर्ख अज्ञानी हैं; जो धनी हैं, वे अपने धनके गर्व में फूले हुए हैं; अपने मनमें समझते हैं, ओह हम ऐसे हैं जो हमारे पास सभी लोग आते हैं; इनके सिवा जो तीसरी श्रेणीके लोग हैं वे महामूर्ख हैं। जो विद्वान् हैं, वे घमण्ड के मारे किसी की बात नहीं सुनते। जो धनी हैं, जो क़दरदानी कर सकते हैं, वे धनमद में ऐसे अन्धे हो रहे हैं कि बात ही नहीं करते। जो गँवार हैं, उन विचारों में कुछ तमीज़ नहीं। तब अपने उत्तमोत्तम विचार और कविताएँ किसे दिखावें जो क़दर करे? क़दरदाँ के न मिलने से हमारी उत्तम वाणी, सरस कविताएँ हमारे शरीर में ही नाश हो जाती हैं—प्रकाशित नहीं होतीं, संसार के सामने नहीं आतीं। यह क्या कम दुःखकी बात है?

मतलब यह, कि विद्वान् यदि गर्व त्यागकर पराये चीज़ोंको भी अच्छी नज़र से देखते, धनी लोग यदि विद्वानों का आदर-सन्मान करते और उनकी चीज़ की क़दर करके उन्हें धन देते, तो कैसा अच्छा होता! पर विद्वानों और धनियोंमें यह बात नहीं है। कोई विद्याके गर्व से मतवाला हो रहा है, तो कोई धनके घमण्ड से पागल हो रहा है। जिनके पास विद्या और धन नहीं है, उनमें गर्व नहीं है, पर उन्हें बुरे भलेकी पहचान नहीं है, इस से हमारा परिश्रम व्यर्थ जाता है—संसार उससे वंचित रहता है।

कुण्डलिया ।

पण्डित मत्सरता भरे, भूप भरे अभिमान ।
और जीव या जगत के, मूरख महाअजान ॥
मूरख महा अजान, देख के संकट सहिये ।
छन्द प्रबन्ध कवित्त, काव्यरस कासों कहिये ।
वृद्धा भई मनमाहिं, मधुर वाणी गुणमण्डित ॥
अपने मन को मार, मौन धर बैठत पण्डित ॥२॥

2. The learned are full of jealousy, the wealthy are intoxicated with vanity; while others are in the hold of ignorance. Hence there is no other resource for one's literary talents save that of their being suffocated within one's own self.

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥३॥

मुझे संसारी कामोंमें सुख नहीं दीखता, मेरी राय में तो पुण्यफल भी भयदायक ही है। इसके सिवा, बहुत से अच्छे-अच्छे पुण्यकर्म करने से जो विषय-सुख के

सामान प्राप्त किये हैं, वे भी विषय-सुख चाहनेवालों को, अन्त समयमें, दुःखों के ही कारण होते हैं ॥२॥

मुझे दुनियवी कामों में ज़रा भी सुख नहीं दीखता। इस जगत्के कामों में कोई सार नहीं है, ये असार हैं. नाशवान हैं, इसलिए मुझे इनमें कोई सुख नहीं दीखता; क्योंकि एक दिन न एक दिन इन से अलग होना पड़ता है। उस समय बड़ा दुःख होता है। इनके सिवा, जो अच्छे अच्छे दान-पुण्य याग यज्ञादि किये जाते हैं, उनसे स्वर्ग मिलता है; पर उन पुण्योंके नाश होने या पूरे होजाने अथवा उनके फल भोग लेने पर स्वर्गसे प्राणी निकाल दिया जाता है। उसे फिर मृत्यु-लोकमें आना होता है। उस समय उसे बड़ा दुःख होता है। इस-लिए मुझे वे पुण्यफल भी भयावह मालूम होते हैं। मुझे उनमें भी सुख नहीं दीखता। इनके सिवा, जो लक्ष्मी और ऐश के सामान पूर्वजन्ममें बड़े बड़े पुण्यदान याग-यज्ञ करनेसे मिलते हैं, वे भी विषय-भोगियों के लिए, अन्त समय में, बड़े दुःख और चिन्ताके कारण होते हैं। विषयासक्तों को विषयों के छोड़ते समय, सचमुच ही, बड़ा कष्ट होता है; और एक न एक दिन उन्हें छोड़नाही पड़ता है। मतलब यह है, कि संसार के सभी पदार्थ असार हैं, सदा नहीं हैं, इसी से दुखदायी हैं।

बुद्धिमान को ऐसी चीज़ों से प्रेम करना चाहिए

जो सदा रहें, जिनसे हमारा वियोग न हो, जिनके लिए हमें कभी सुखी होकर दुःखी न होना पड़े। स्त्री पुत्र धन आदि नाशवान पदार्थ हैं, सदा से इनका हमारा संग नहीं है और आगे भी इनका हमारा संग न रहेगा। आज इनके साथ संयोग हुआ है, तो आज ही या कल इनसे वियोग अवश्य होगा। ऐसे पदार्थों से मूर्ख ही प्रेम करते हैं; इसी से वे सदा दुःख-सुख के झंझट में रहते हैं। लेकिन जो ज्ञानी हैं, जो विद्वान् हैं, जो असल और कम असल की परख जानते हैं, वे इस लोक और परलोक के पदार्थों की असारता, संयोग-वियोग आदि को बुद्धिसे विचार कर, उनसे प्रेम नहीं करते। वे विषयों को विष समझते हैं। वे ऐसी चीज़ से प्रेम करते हैं, जिससे सदा, अनन्त काल तक, सुख मिलता है; कभी दुःख उठानेका मौक़ा नहीं आता। वह क्षणिक सुख देनेवाली और परिणाममें दुःख पैदा करनेवाली चीज़ों से भूलकर भी प्रेम नहीं करते। वह एक मात्र अविनाशी, नित्य, आत्मासे प्रेम करते हैं; क्योंकि उसके साथ प्रेम करनेसे कभी दुःख उठाना नहीं पड़ता, किन्तु अज्ञानी इस बातको नहीं समझते, इसी से दुःख भोगते हैं। खूब याद रक्खो, विषय विष से भी बुरे हैं। इन में नाम को भी सुख नहीं है। सुख है,—कृष्ण के ध्यान में; सुख है,—कृष्ण से प्रीति करने में; सुख है एकाग्र-

चित्त से आत्मा के ध्यानमें,—उसके प्रेम में मग्न रहने में।

8. I do not see a good end of the deeds done in this world, and when I consider deeply even acts of benevolence which might have lost their usefulness after they have given the results, fill me with fear. The objects of pleasure which have been acquired by the accomplishment of meritorious deeds and after long sustained efforts, do only give anxiety and torture to the pleasure-seeking mortals when they have to part with them in the flag end.

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः॥
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्चमाम् ४

धन मिलने की उम्मीद से, मैं ने ज़मीन के पेंदे तक खोद डाले; अनेक प्रकारकी पार्वतीय धातुएँ फूँक डालीं; मोतियों के लिए समुद्र की भी थाह ले आया; राजाओं को राज़ी रखने में भी कोई बात उठा न रखी; मन्त्र-सिद्धिके लिए रात-रात भर श्मशान में एकाग्रचित्त से

बैठा हुआ जप करता रहा; पर अफसोस की बात है, कि इतनी आफतें उठाने पर भी, एक कानी कौड़ी न मिली। इसलिए हे तृष्णा! अब तो तू मेरा पीछा छोड़ ॥ ४ ॥

यह जान-सुन कर, कि ज़मीन में धन है, मैंने ज़मीन को पैंदे तक खोद डाला, पर कुछ भी न मिला। रसायन सिद्ध करने या सोना चाँदी बनाने के लिए, मैंने अनेक तरह की धातुएँ फूँक डालीं, पर रसायन न बनी। फिर मैंने यह जान कर, कि समुद्र रत्नों की खान है—उसमें मोतियोंकी इफ़रात है ; मैं समुद्रमें भी घुसा और उसकी थाह ले आया, मगर कुछ हाथ न आया। फिर यह सोचकर, कि राजाओंकी सेवा करने से धन हाथ आता है ; मैंने उनके सन्तुष्ट करने की भी भरपूर चेष्टाएँ कीं ; उन्हें सब तरह खुश किया, पर फिर भी धन हाथ न आया। शेष में, मैंने मंत्रसिद्धि द्वारा कामना सिद्ध करनी चाही, इसलिए मैं रात-रात भर अकेला मरघट में मुर्दों के पास बैठकर मन्त्र जपता रहा, कि वशीकरणमंत्र सिद्ध हो जाय और राजाओं को वश करके धन प्राप्त करूँ ; पर यहाँ भी मुझे निराशा का ही सामना करना पड़ा। सारी चेष्टायें करने पर भी एक फूटी कौड़ी न मिली! इसलिए हे तृष्णा! अब मैं निराश होगया हूँ। मुझे सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दीखता है। अब तो तू दया करके मेरा पीछा छोड़ दे!

छप्पय ।

खोदत डोल्यो भूमि, गड़ीहु न पाई सम्पति ।
धौंकत रह्यो पखान, कनक के लोभ लगी मति ।
गयो सिन्धु के पास, तहाँ मुक्ताहु न पायो ।
कौड़ी कर नहिं लगी, नृपनको शीश नवायो ।
साधे प्रयोग शमशान में, भूत प्रेत वैताल साजि ।
कितहूँ भयो न वांछित कछू, अब तो तृष्णा मोहिं तजि ॥४॥

4. I dug up the surface of the earth in search of treasure, burnt down various minerals in my hankering after alchemy, explored the ocean in search of pearls or in my greed after trade, tried my best to please the kings, and spent the whole nights in lonely cremation grounds reproducing chants with an all-attentive mind, but it is a pity that I have gained not a single broken cowrie although I did all this. Do thou, O Greed, now leave me!

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला ॥
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशंकया काकव-
त्तृष्णे दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥ ५ ॥

मैं अनेक दुर्गम और कठिन स्थानों में डोलता फिरा, पर कुछ भी नतीजा न निकला। मैंने अपनी जाति और अपने कुलका अभिमान त्यागकर पराई चाकरी भी की, पर उससे भी कुछ न मिला। शेष में, मैं कव्वे की तरह डरता हुआ और अपमान सहता हुआ पराये घरों के टुकड़े भी खाता फिरा। हे पाप-कर्म करानेवाली और कुमतिदायिनी तृष्णा! क्या तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं हुआ? ॥५॥

धनके लालच में, मैं अपना देश और घर-द्वार छोड़ कर ऐसे-ऐसे स्थानोंमें गया, जहाँ मनुष्य बड़ी कठिनाई से पहुँच सकते हैं। वहाँ जाकर भी मुझे एक पाई न मिली। मैंने अपने द्विजत्व या ऊँची जातिके अभिमान को त्याग कर पराई नौकरी भी की और मालिकने जो-जो नीच कर्म कराये वही किये, लेकिन उस से भी मुझे धन न मिला। शेषमें, मैं मान-अपमानको छप्पर पर रखकर, बिना बुलाये ही लोगोंके घर गया और कव्वे की तरह डरते-डरते खाता रहा। मुझे इन सब कामोंसे बड़ी ठेस लगी, मैंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाये, मान खोया, लोगोंके कुवचन सहे, पर फिर भी मेरी कामना सिद्ध न हुई! इसलिए तृष्णा! मैं तुझ से पूछता हूँ कि कम्बख़्त! इतने कुकर्म कराकर भी तुझे सन्तोष हुआ या नहीं?

छप्पय ।

भटक्यो देश-विदेश, तहाँ फल कछुहु न पायो ।
निज कुलको अभिमान, छाँड़ सेवा चित लायो ।
सहि गारी अरु खीझ, हाथ झारत घर आयो ।
दूर करत हूँ दौरि, स्वान ज्यों परगृह खायो ॥
इहि भाँति नचायो मोहि तैं, बहकायो दै लोभतल ।
अजहूँ न तोहि सन्तोष, कहु तृष्णा तू पापिन प्रबल ॥५॥

5. I roamed about many difficult and impassable lands but it was all fruitless. I served others forsaking the reasonable pride of my tribe and family but it was of no use. I even dined in other people's houses where no respect was shown to me and where I had always been in suspense like a crow. Art thou not O evil natured Avarice, even now satisfied with having perpetrated so many misdeeds ?

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै-
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमतिशून्येन मनसा ॥
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामञ्जलिरपि
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥ ६ ॥

मैंने दुष्टोंकी सेवा करते हुए उनकी तानेज़नी और ठट्ठेबाज़ी सही, भीतरके दुःख से आये हुए आँसू रोके और उद्विग्न चित्तसे उनके सामने हँसता रहा। उन हँसनेवालों के सामने, चित्त को स्थिर करके, हाथ भी जोड़े। हे झूठी आशा! क्या अभी और भी नाच नचायेगी? ॥६॥

मैंने नीचों की नौकरी करली। उनकी सेवा करते हुए मैंने उन दुष्टोंके अवाज़े-तवाज़े, गाली-गलौज और दिल्लगी सभी कुछ बर्दाश्त कीं। उनके वाग्बाणों से मेरे कलेजे में छेद होजाते थे और हृदय रोने लगता था। उसके कारण से जो आंसू आते थे, उन्हें मैं रोक लेता था। भीतरसे मेरा दिल एकदम सुझांगया था, पर फिर भी मैं उनके सामने हँसा करता और क्रोधको दबाकर और चित्तको स्थिर और शान्त करके उन मसखरों को मैंने हाथ भी जोड़े; पर फिर भी उन से कुछ न मिला! हे आशा! निष्फला आशा! इतने नाच तो नचाये, अब और तेरे दिलमें क्या है?

छप्पय।

सहे खलन के बैन इतै, पर तिनहिं रिझाये।
नैनन को जल रोक, शून्यमन मुख मुसक्याये॥
देत नहीं कछु वित्त, तऊ कर जोर दिखाये।
कर कर चाव करोर, भोरही दौरत आये॥

देखते हैं, रोज़ ही सूर्य उदय होते हैं और अस्त होते हैं। रोज़ ही सवेरा होता है और रोज़ ही संध्या होती है। सूर्यके उदयास्त के साथ-ही-साथ मनुष्यों की आयु क्षीण होती जाती है; यानी उम्र घटती जाती है। किसी ने क्या खूब कहा है—

सुबह होती है शाम होती है।
योंही उम्र तमाम होती है ॥

पर मनुष्योंको, घरधन्धों या बड़े बड़े कारोबार या व्यापार में लगे रहनेके कारण, इस का ख़याल नहीं होता। उनका दिल अपने कामों में लगा रहता है और मौत नज़दीक आती जाती है। रोज़ ही प्राणियों को पैदा होते और मरते देखते हैं, रोज़ ही किसी को आफत में गिरफ़्तार होते देखते हैं, किसी गुलाब के से फूलको बूढ़ा होते देखते हैं, पर ये सब तमाशे देखकर भी हमें कुछ ख़याल नहीं होता। भला; इस लापरवाई का भी कुछ ठिकाना है! इस बेहोशी और ग़फ़लत का कारण मोहरूपी मदिरा है, जिसे पीकर संसार नशे में मतवाला हो रहा है। संसार की और अपनी देह की यह हालत देखकर भी, लोग पापों से विरत नहीं होते, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार नहीं करते, पराई बुराई करने से बाज़ नहीं आते! इस से बढ़कर बेवकूफी और नाज्ञानी क्या होगी?

स्त्रीके फटे हुए कपड़ों को दीनातिदीन बालक खींचते हैं, घरके और मनुष्य भूखके मारे उसके सामने रोते हैं—इस से स्त्री अतीव दुःखित है। ऐसी दुःखिनी स्त्री यदि घरमें न होती, तो कौन धीर पुरुष, जिसका गला माँगनेके अपमान और इँकारी के भय से रुका आता है, अस्पष्ट भाषा या टूटे फूटे शब्दोंमें, गिड़गिड़ा कर "कुछ दीजिये" इन शब्दों को, अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए, कहता ? ॥ ८ ॥

यदि किसी के घरमें ऐसी दुखिया स्त्री न हो, जिस के फटे हुए कपड़ों को दीनातिदीन बच्चे खींच रहे हों और जो घरके दूसरे मनुष्यों के अन्नके लिए रोने से दुःखित हो; तो कौन धीर पुरुष है, जो अपना पेट भरनेके लिए, याचना भंग होनेके भयसे, टूटे फूटे शब्दोंमें गिड़-गिड़ाकर "दीजिये" शब्द कहे ?

मतलब यह है, कि स्त्रीके कारण से ही पुरुषको तरह तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं—अपमान सहने पड़ते हैं; इसलिए स्त्री पुत्र प्रभृति दुःखके कारण हैं। जब दरिद्रतामें खानेको अन्न नहीं होता, बालक माँको पकड़-पकड़ कर खींचते और रोटी मांगते हैं, तब वह बेचारी एकदमसे दुःखित हो जाती है। उसके मलिन चहरेको देखकर पुरुष, अपने मानापमान का ख़याल छोड़कर, भीख तक माँगने पर उतारु होजाता है। उस समय
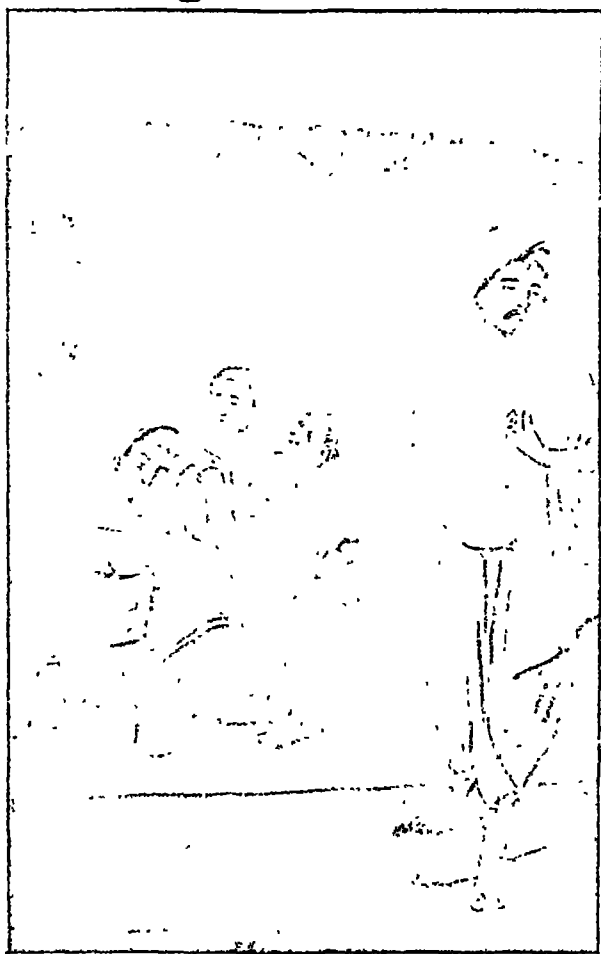
रोटीके टुकड़ोंके लिये बच्चे स्त्रीका कपड़ा खींच रहे हैं। इस अवस्थाको देखकर पुरुषके दिलमें कैसी वेदना हो रही है! संसार में स्त्री ही सब दुःखोंकी कारण है।

[पृ० १६ श्लोक ८

इस डरसे कि कहीं मुझे कोई भिक्षा देने से नाहीं न करदे, पुरुषका गला घुटता है; पर बेचारा लड़खड़ाती ज़बान से "कुछ मुझे दीजिये" शब्द कहता ही है। यदि क्षुधा न होती, तो कौन पुरुष अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए ऐसा करता ?

छप्पय ।

फट्यो पुरानो चीर, ताहि खैंचत अरु फारत ।
छोटे छोटे बाल, दुःखही दुःख पुकारत ।
घरमाहिं नहिं अन्न, नारिहू निर्दय यातें ।
भई महा जड़रूप, कढ़त मुखसों नहिं बातें ।
यह दशा देख अखरत चित, जीव थरथरत रुकत मुख ।
अपने मुजरे या उदरहित, देह, कहै को सतपुरुष ॥८॥

८. If one had not to see the distressed face of a housewife, wearing worn out clothes, the skirts of which are continually being drawn by miserable looking children and who has to feel the agony of listening to the cries of hunger-stricken members of her family, who having a sense of self-respect would utter, for the satisfaction of his own hunger, the word "Give," spoken in a faltering tone, owing to his throat being

choked by the fullness of his heart, in fear of his appeal for charity being refused.

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ॥
शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने
अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥ ९ ॥

बुढ़ापे के मारे भोग भोगने की इच्छा नहीं रही, मान भी घट गया, हमारे बराबरवाले चल बसे। जो घनिष्ट मित्र रह गये हैं, वे भी निकम्मे या हम जैसे होगये हैं। अब हम बिना लकड़ी के उठ भी नहीं सकते, आँखोंमें अँधेरी छा गई है। इतना सब होनेपर भी, हमारी काया कैसी बेहया है, जो अपने मरनेकी बात सुनकर चौंक उठती है! ॥८॥

खुलासा यह है, कि हमारी जवानी चली गई है, वह जोश-खरोश चटक-मटक अब नहीं रही है, बुढ़ापे का दौरदौरा होगया है, गालों में खड्डे होगये है, बदन पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, सिरके बाल सफेद होगये हैं, दाँतों ने जवाब देदिया है। यह तो हमारी दशा होगई है। लोगों में जो हमारा आदरमान था, अब वह भी घट रहा है। अब लोग हमें निकम्मा बूढ़ा समझकर घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। हमारी उम्र के लोग हमारे देखते-

देखते चल बसे। जो रह गये हैं, वे हम जैसे निकम्मे हैं। अब हम ऐसे कमज़ोर होगये हैं, कि बिना लकड़ी टेके चल भी नहीं सकते। आँखों से सूझता नहीं। इतने पर भी, हमारी काया मरने के नाम से काँप उठती है। जीवनके मोह की अजब हालत है!

छप्पय।

भयी रोगकी चाह, गयौ गौरव गुमान सब।
मित्र गये सुरलोक, अकेले आप रहे अब।
उठत सु लकड़ी टेक, तिमिर आँखन में छायौ।
शब्द सुनत नहिं कान, वचन बोलत बहकायो।
यह दशा वृद्धतनकी, तऊ चकित होत मरिबौ सुनत।
देखो विचित्र गति जगत की, दुखहूँ को सुखसों लुनत॥६॥

9. Along with the approach of old age the power for the enjoyment of sensual pleasures has vanished and the great respect and honour paid by the people have also declined. Our equals in age have already died. Our surviving friends are not so better off in the world as to be of any use to us. Owing to physical weakness we can only rise and that slowly with the help of a stick. Our eyes have become

dim with ever-increasing darkness. How shameless should our body be to think that notwithstanding all these disabilities it still fears to meet death!

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रामरुत्कल्पितं
व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयांति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः १०॥

विधाताने हिंसारहित और विना उद्योगके मिलने वाली हवा का भोजन सांपों को जीविका बनाई, पशुओं को घास खाना और ज़मीन पर सोना बताया, किन्तु जो मनुष्य अपनी बुद्धि के बल से भवसागर के पार हो सकते हैं, उनकी जीविका ऐसी बनाई, कि जिसकी खोज में उनके सारे गुणों की समाप्ति होजाय, पर वह न मिले ॥ १० ॥

विधाता या रचयिताने सांपों के लिए तो हवा का भोजन बता दिया है, जिसके हासिल करनेमें किसी प्रकार की हिंसा भी नहीं करनी पड़ती और वह बिना किसी प्रकारकी चेष्टा या उद्योग के उन्हें अपने वासस्थानों में ही मिल सकता है। जानवरोंके लिए घास चरने को और ज़मीन सोने को बतादी, इससे उनको भी अपने खाने के लिए किसी प्रकारकी विशेष चेष्टा नहीं करनी

पड़ती, वे जङ्गल में उगी-उगाई घास तैयार पाते हैं और इच्छा जाते ही पेट भर लेते हैं। उन्हें सोनेके लिए पलँगों और गद्दे तकियों की फ़िक्र नहीं करनी पड़ती, ज़मीन पर ही जहां जी चाहता है पड़ रहते हैं—सर्प और पशुओंके साथ भगवान्‌ने पक्षपात किया, उन्हें बेफ़िक्री की ज़िन्दगी भोगने के उपाय बता दिये, किन्तु मनुष्यों के साथ ऐसा नहीं किया! उन बेचारों को बुद्धि तो ऐसी दी, कि जिससे संसार-सागर से पार हो सकें अथवा दुर्लभ मोक्ष पदको प्राप्त कर सकें; पर उन्हें जीविका ऐसी बताई, कि जिसकी खोजमें उनकी सारी कोशिशें बेकार हो जायँ, पर जीविका का ठिकाना न हो। यह क्या कुछ कम दुःखकी बात है? यदि विधाता मनुष्यों को भी साँपों और पशुओंकी सी ही जीविका बताता, तो कैसा अच्छा होता? मनुष्य, जीविका की फ़िक्र न होने से, सहजमें ही अपनी बुद्धिके ज़ोरसे मोक्ष पा जाते।

उस्ताद ज़ौक़ भी कुछ इसी तरह की शिकायत करते हैं,—

बनाया ज़ौक़ जो इन्साँ को उसने जुज़्व ज़ईफ़।
तो उस ज़ईफ़ से कुल काम दो जहाँ के लिए॥

ऐ ज़ौक़! ईश्वरको देखा, कि उसने मनुष्य को कितना कमज़ोर बनाया, पर काम उससे दोनों लोकों के लिये। फ़िक्र उसे इस लोक और परलोक दोनों की लगादी।

छप्पय ।

बिन उद्यम बिन पाप, पवन सर्पन को दीन्हीं ।
तैसेही सब ठौर, घास पशुवनको कीन्हीं ।
जिनकी निर्मल बुद्धि, तरन भवसागर समरथ ।
तिनकी दूभर वृत्ति, हरत गुन ज्ञान ग्रन्थ गथ ।
विधि अवधि करीं तें अति अधिक, यातें नर परघर फिरत ।
निशि द्यौस पचत तनमन नचत, लचत रचत उरझत गिरत १०

10. The Creator has designed the harmless and easily obtainable air to be the food of serpents. The quadrupeds have been made to eat the green grass and to sleep on the flat earth. But the tendency of human beings, who have been endowed with sufficient reason to enable them to attain a life of everlasting bliss, has been created such as to baffle all the faculties of an observer in his attempt to explain its working.

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥११॥

हमने संसार-बन्धन के काटने के लिए, यथाविधि, ईश्वर के चरणोंका ध्यान नहीं किया, हमने स्वर्गके दरवाज़े खुलवाने वाले धर्मोंका भी सञ्चय नहीं किया और हमने स्वप्नमें भी स्त्रीके कठोर कुचोंका आलिङ्गन नहीं किया। हम तो अपनी माँके यौवन रूपी वनके काटने के लिए कुल्हाड़े ही हुए ॥ ११ ॥

हमने लोक-परलोक साधनके लिए, जन्म-मरण का फन्दा काटनेके लिए अथवा परमपद की प्राप्ति के लिए, शास्त्रों में लिखी विधिसे, परमात्माके कमल चरणों का ध्यान नहीं किया, उसकी पूजा उपासना नहीं की, सारी उम्र पेटकी चिन्तामें ही बितादी। हमने पूर्वजन्म या वर्तमान जन्मके पापोंके समूल नाश करनेके लिए प्रायश्चित्त नहीं किये, न जीवोंको अभय किया, न दानपुण्य किया, फिर हमारे लिए स्वर्गका द्वार कैसे खुल सकता है? क्योंकि धर्मका सञ्चय करनेसे ही स्वर्गका द्वार खुलता है। न हमने परमात्माके पदपंकजों का ध्यान किया, न धर्म संचय किया और न स्त्रीके पीनपयोधरों का स्वप्नमें भी आलिङ्गन किया! मतलब यह है, न हमने संसारके मिथ्या विषय-सुख ही भोगे और न हमने मोक्ष या स्वर्ग-प्राप्ति के उपाय ही किये। "दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम" अथवा "इधर के रहे न उधर के रहे, खुदा ही मिला न विसाले सनम।" हमने योंही संसार में जन्म

लेकर अपनी माताकी जवानी और नाश की ! अगर हम जैसे निकम्मे न पैदा होते, तो बेचारी की जवानी की रेढ़ तो न होती !

छप्पय

विधि सों पूजे नाहिं, पाय प्रभु के सुखकारी ।
प्रभु को धरो न ध्यान, सकल भव दुख को हारी ।
खोले स्वर्ग कपाट, धमहू कर्‍यो न ऐसो ।
कामिन कुच के संग, रंग भर रह्यो न तैसो ।
हरि हाय२ कीन्हौ कहा, पाय पदारथ नर जनम ।
जननी यौवन वन दहन कों, अगिन रुप प्रगटे भे हम ॥११

11. We did not meditate in an appropriate way upon the essence of Godhead for the termination once for all of our ever-recurring births and deaths. Neither did we practise religion which is the surest means for throwing open the door leading to Paradise. Nor did we embrace even in our dreams the pair of fat breasts or seductive niples of a woman. Having done nothing for the present or the next world, we are only like an axe meant to hew down the wood of our mothers' youth.

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ १२ ॥

विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने हमारा ही भुगतान कर दिया; हमने तपको नहीं तपा, किन्तु तपने हमें ही तपा डाला। काल का ख़ात्मा न हुआ, किन्तु हमारा ही ख़ात्मा हो चला। तृष्णा का बुढ़ापा न आया, किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आगया ॥१२॥

हमने बहुत कुछ भोग भोगे, पर भोगोंका अन्त न आया; हाँ हमारा अन्त आगया। काल या समय का अन्त न आया, किन्तु हमारा अन्त आगया—हमारी उम्र पूरी हो चली। हमें जो धर्म-कार्य्य करने थे, वह हम न कर सके। हमने तप तो नहीं तपा, किन्तु संसारी तापों ने हमारे तईं तपा डाला—संसारके जंजालमें फँसकर हम ही शोक-तापोंसे तप गये। हमारा अन्त आ पहुँचा, हम निर्बल और वृद्ध होगये; पर तृष्णा बूढ़ी और कम-ज़ोर न हुई। हमें संसार से विरक्ति न हुई।

ऐसी ही बात उस्ताद ज़ौक़ ने कही है:—

दुनिया से ज़ौक़ रिश्तये उल्फ़त को तोड़ दे।
जिस सर का है यह बाल उसी सरमें जोड़ दे ॥१॥

पर जौक़ न छोड़ेगा इस पीरा ज़ाल को।
यह पीराज़ाल गर तुझे चाहे तो छोड़ दे ॥२॥

मतलब यह, कि लोग दुनिया को नहीं छोड़ते, दुनिया ही उन्हें निकम्मा करके छोड़ देती है।

छप्पय।

भोग रहे भरपूर, आयु यह भुगत गई सब।
तप्यो नाहिं तप मूढ़, अवस्था तपत भई अब।
काल न कितहूँ जात, वैस यह चली जात नित।
तृष्णा भई नाहिं आस, वृद्ध वय भई छाँड हित।
अजहूँ अचेत चित चेतकर, देहगेहसों नेह तज।
दुख दोष हरन मंगल करन, श्रीहरिहरके चरण भज ॥१२॥

12. We did not exhaust the enjoyments of life, rather we ourselves were exhausted. We did not practise penances, but it was rather undergoing a life of extreme misery. It was not Time that passed, rather it was ourselves that passed away. It is not Avarice that has become monotonous and weak, rather we ourselves have become so.

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः
सोढा दुःसहशीतवाततपनाः क्लेशान्न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैःफलैर्वञ्चितम् १२॥

क्षमा तो हमने की, परन्तु धर्मके ख़याल से नहीं की। हमने घरके सुख-चैन तो छोड़े, परन्तु संतोष से नहीं छोड़े। हमने सरदी-गरमी और हवाके न सह सकने योग्य दुःख तो सहे, किन्तु हमने ये सब दुःख तपकी ग़रज़ से नहीं, किन्तु दरिद्रताके कारण सहे। हम दिनरात ध्यान में लगे तो रहे, पर धनके ध्यानमें लगे रहे—हमने प्राणायाम क्रिया द्वारा शम्भु के चरणोंका ध्यान नहीं किया। हमने काम तो सब मुनियों के से किये, परन्तु उनकी तरह फल हमें नहीं मिले ! ॥१३॥

हमने क्षमा तो की, परन्तु दयाधर्म्म-वश नहीं की, हमारी क्षमा असमर्थताके कारण से हुई; हम में सामर्थ्य नहीं थी, इसीसे हम शान्त होगये। हमने अच्छा खाना-पीना ऐश-आराम छोड़े, पर मजबूरी से छोड़े, अपनी भीतरी इच्छासे नहीं छोड़े। हमने उन्हें रोग प्रभृतिके कारण या और किसी घटनाके कारण त्यागा, पर सन्तोष से नहीं त्यागा। हमने गर्म सर्द हवाके झोंके सहे; हमने सर्दी गर्मी सही ज़रूर, किन्तु तप को ग़रज़से नहीं ;

किन्तु घरमें पैसा न होनेकी वजह से। हम सोते-जागते आठ पहर चौंसठ घड़ी ध्यान तो करते रहे, पर पैसे या स्त्री-पुत्रोंका अथवा संसारके और झगड़ोंका। हमने भोलानाथ के कमल चरणोंका ध्यान नहीं किया! सारांश यह, हमने मुनियों की तरह विषय-सुख भी त्यागे, उनकी तरह सरदी-गर्मी के दुस्सह कष्ट भी उठाये, उनकी तरह हम ध्यान-मग्न भी रहे—पर वे जिस तरह सामर्थ्य होते भी शान्त होते हैं—सन्तोष के साथ विषय-सुखोंसे मुँह मोड़ लेते हैं—शिवका ही ध्यान करते हैं, उस तरह हमने नहीं किया; इसीसे हम उन फलों से वंचित—महरूम—रहे, जिनको वे लोग प्राप्त करते हैं।

जो लोग शक्ति-सामर्थ्य रहते विषयों को छोड़ते हैं, वे ही प्रशंसा-भाजन होते हैं। सामर्थ्य न रहने या धातुओंके क्षीण होनेपर जो लोग विषयों को छोड़ते हैं, वे तो मन से नहीं—लाचारी से छोड़ते हैं; इसलिए वे प्रशंसा-भाजन नहीं हो सकते। घर-जंजाल में रहकर, सर्दी-गर्मी और शोक-ताप आदि के कष्ट उठाने ही पड़ते हैं; फिर तप ही क्यों न किया जाय? क्योंकि घर-जंजालोंके शोक-तापसे कोई लाभ नहीं, किन्तु तपसे स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। धनका ध्यान करनेसे सच्चा सुख नहीं मिल सकता। धनसे जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और

झूठा है। इसलिए धन-ध्यान छोड़कर, आशुतोष भगवान् शिवके चरणों का ध्यान करना अच्छा; जिस से सभी मनोरथ पूरे होते हैं और अन्तमें जन्म-मरण के झगड़ों से छुटकारा मिलकर परमपद—मोक्ष मिल जाती है। वह बड़े मूर्ख हैं, जो कष्ट तो उठाते हैं; पर वे कष्ट नहीं उठाते, जिनसे उभय लोक साधन हों।

छप्पय।

क्षमा क्षमा किन कीनि, बिना सन्तोष तजे सुख।
सहे सीत तप घाम, बिना तप पाय महादुख।
परयो विषैको ध्यान, चन्द्रशेखर नहिं ध्यायो।
तज्यो सकल संसार, प्यार जब उन बिसरायो।
मुनि करत काज सोई करें, फल दीसत विपरीत अति।
अब होत कहा, चिन्ता किये, अजहूं कर हरचरणरति॥१३॥

13. We forgave, but not for the sake of forgiveness. We renounced the comforts of the home, but not for the sake of renunciation and contentment. We suffered the unbearable rigours of cold, heat and the winds, but it was through adversity that we did so and not for the sake of practising Tapa. We meditated day and night with

regulated breath on Mammon and not on God. We practised the very deeds which the sages do, but devoid of the fruits which the latter reap of them.

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकितं शिरः ॥
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥ १४ ॥

चेहरे पर झुर्रियां पड़ गईं, सिरके बाल पककर सफेद होगये, सारे अङ्ग ढीले होगये,—पर तृष्णा तो तरुण होती जाती है !! १४ ॥

बुढ़ापा आगया है, क्योंकि चहेरे का चमड़ा सुकड़ गया है. झुर्रियाँ पड़ गईं हैं, रङ्ग-रूप हवा होगया है, हाथ पैर आदि अङ्ग शिथिल या ढीले होगये हैं, किसी कामकी सामर्थ्य नहीं रही है। शरीर की तो यह दशा होगई. पर तृष्णा का न तो बुढ़ापा आया, न बल घटा, वह तो उल्टी तेज़ हो रही है। हमारे शरीर का बुढ़ापा आगया, पर तृष्णा की तो जवानी चढ़ रही है !

महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं—

नैनन की पलही पलमें क्षण आधि घरी घटिका जु गई है।
जाम गयो जुग जाम गयो, पुनि साँझ गई तब रात भई है॥
आज गई अरु काल गई, परसों तरसों कछु और ठई है॥
सुन्दर ऐसे ही आयु गई, तृष्णा दिन ही दिन होत नई है।

दोहा ।

सेत चिकूर तन दशन बिन, बदन भयो ज्यौं कूप ।
गात सबै शिथिलित भये, तृष्णा तरुण स्वरूप ॥१४॥

14. In old age, the face is marked with wrinkles, the head is lined with grey hair and the limbs all grow loose, but Desire alone becomes rejuvenated and predominant.

येनैवाम्बरखंडेन संवीतो निशि चन्द्रमाः ॥
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥ १५ ॥

आकाशके जिस टुकड़ेको ओढ़ कर चन्द्रमा रात बिताता है, उसी को ओढ़ कर सूर्य्य दिन बिताता है। इन दोनोंकी कैसी दुर्गति होती है!

आकाश के जिस हिस्से को रात के समय चन्द्रमा तय करता है, उसी को दिनमें सूर्य्य तय करता है। सूरज और चांद—ज्योतिष्कों में सर्व्वश्रेष्ठ और सबसे बड़े हैं। जब ऐसे-ऐसों की ऐसी दुर्गति होती है, कि बेचारों को रात-दिन इधरसे उधर और उधरसे इधर चक्कर लगाने पड़ते हैं और परिणाममें कोई फल भी नहीं मिलता; तब हमारी आपकी कौन गिन्ती है? जब ये पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं, इन्हें ज़रासी भी आज़ादी नहीं है, एक दिन क्या—एक क्षण भी ये अपनी इच्छानुसार

आराम नहीं कर सकते, तब छोटे प्राणियोंको क्या कार्य है ?

शिक्षा—बड़ों की दुर्दशा देखकर छोटों को सन्तोष करना चाहिये। संसार में कोई भी सुखी नहीं है।

दोहा।

इक अम्बरके टूकको, निशिमें ओढ़त चन्द।

दिनमें ओढ़त नाहि रवि, तू कत करत छछन्द ॥१५॥

15. The sun has to move during the day through the same part of the heavens as the moon does at night Being the two greatest Luminaries, mark how wonderful is their dependent career ! Can a tiny mortal hope to be more free ?

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥ १६ ॥

विषयों को हम चाहे जितने दिनों तक क्यों न भोगें, एक दिन वे निश्चयही हमसे अलग हो जायँगे। तब मनुष्य उन्हें स्वयं अपनी इच्छासे ही क्यों न छोड़ दे ? इस जुदाईमें क्या फ़र्क़ है ? अगर वह न छोड़ेगा

तो वे छोड़ देंगे। जब वे स्वयं मनुष्य को छोड़ेंगे, तब उसे बड़ा दुःख और मनःक्लेश होगा। अगर मनुष्य उन्हें स्वयं छोड़ देगा, तो उसे अनन्त सुख और शान्ति प्राप्त होगी ॥१६॥

जिन विषय-सुखों को हम चिरकाल से भोगते आ रहे हैं, वे सदा हमारे साथ न रहेंगे; निश्चय ही वे एक दिन हमारा साथ छोड़ देंगे। इससे, यदि हम ही उन्हें पहले सेही छोड़ दें, तो हमें महासुख और शान्ति मिलेगी। यदि हम न छोड़ेंगे और वे हमें छोड़ेंगे, तो हमें महादुःख और मनस्ताप होगा।

जो लोग विषयों को पहले ही त्याग देते हैं, उन्हें उनके न होने पर दुःख नहीं होता; किन्तु जो उन्हें नहीं छोड़ते, उन्हें उनके न होने पर महाकष्ट होता है। जो बुद्धिमान् पहलेसे ही धन-दौलत स्त्री-पुत्र आदि से मोह हटा लेते हैं, उन्हें मरते समय कष्ट नहीं होता। जो अपना मन उनमें लगाये रहते हैं, वे मरते समय रोते हैं, पर ज़बान बन्द हो जानेसे अपने मनकी बात जता नहीं सकते। इसलिये जो सुख से मरना चाहें, उन्हें पहले सेही विषयोंसे मुँह मोड़ लेना चाहिये। इसी तरह जो आज नाना प्रकार के सुख भोग रहा है, यदि काल उसे वे सुख न मिलें तो वह बड़ा दुःखी होता है। किन्तु जो विषयों को भोगते तो हैं, किन्तु उनमें आसक्ति नहीं

रखते, उन्हें विषय-सुखोंके न मिलने या उनसे बिछुड़ने पर ज़रा भी कष्ट नहीं होता।

शिक्षा—जो विषय एक दिन तुम्हें निश्चय ही छोड़ देंगे, उन्हें तुम स्वयं ही क्यों न छोड़ दो? तुम्हारे छोड़ने से तुम्हें अनन्त सुख मिलेगा और उनके छोड़ने से तुम्हें घोर मनस्ताप या मनोवेदना होगी।

16. The objects of sensual pleasure are sure to part from us, even if we enjoy them for a considerable length of time. A man can part with them of his own accord. What is the difference in parting, if he does not follow the latter course? They generate great agony and distress in our mind, if they themselves leave us; but if we renounce them ourselves, they are sure to give us unbounded peace of mind and happiness.

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा
परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः॥
जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण-
स्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः॥१७॥

जब ज्ञान का उदय होता है, तब शान्ति की प्राप्ति होती है। शान्तिकी प्राप्ति से तृष्णा शान्त हो जाती

है, किन्तु वही तृष्णा विषयों के संसर्ग से बेहद बढ़ती है। मतलब यह है, कि विषयोंसे तृष्णा कभी शान्त नहीं हो सकती। सुन्दरी के कठोर कुचों पर हाथ लगाने से काम-मद बढ़ता है, घटता नहीं। जराजीर्ण ऐश्वर्य को देवराज इन्द्र भी नहीं त्याग सकते ॥१७॥

ज्ञान सेही तृष्णा का नाश और शान्ति की प्राप्ति होती है। विषयों के भोगने से तृष्णा घटती नहीं, उलटी बढ़ती है। जो तृष्णा को त्यागते हैं, तृष्णा से नफ़रत करते हैं, उसे पास नहीं आने देते, उनसे तृष्णा भी दूर भागती है। हम जब किसी स्त्री को प्यार करते हैं, उसका आदर-मान करते हैं, तब वह हमारे चेंटती है ; किन्तु जब हम उससे मुँह फेर लेते हैं, उसे मुँह नहीं लगाते, उसे प्यार नहीं करते, उसे नफ़रत की नज़र से देखते हैं ; तब वह भी हमसे अलग रहती है—, हमारे पास आने की उसे हिम्मत नहीं होती। इसलिये जो तृष्णासे पीछा छुड़ाना चाहें, उन्हें विषयोंसे मुँह मोड़ लेना चाहिये। देखिये, यद्यपि स्वर्ग के राज्य को भोगते लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये, तोभी इन्द्र उस स्वर्ग-राज्य को छोड़ नहीं सकता। जब इन्द्रको भी तृष्णा लाखों-करोड़ों वर्ष राज्य भोगने से शान्त नहीं होती, तब मनुष्य बेचारे किस बाग़ की मूली हैं ? तृष्णा पुरानी होनेसे बढ़ती है, घटती नहीं। हम ज्यों-ज्यों

विषय-सुखों को भोगते हैं, त्यों-त्यों वे पुराने होते हैं और हमारी तृष्णा बढ़ती है। पुराने होने पर उन्हें छोड़नेमें हमें बड़ा कष्ट होता है।

शिक्षा—तृष्णा को शीघ्र छोड़ो। पुरानी होने से वह पापीयसी और भी बलवान हो जायगी। फिर उसे त्यागना आपकी शक्तिके बाहर हो जायगा। उसके नाश के लिये "ज्ञान" का पैदा होना ज़रूरी है। उसका सच्चा मार "ज्ञान" ही है।

छप्पय।

तृष्णा मूल नसाय, होय जब ज्ञान उदय मन।
भये विषयमें लीन, बढै दिन पर दिन चौगुन।
जैसे मुग्धा नार, काठिन कुच हाथ लगावत।
बढ़त काममद अधिक, अधिक तनमें सरसावत।
जराजीर्ण ऐश्वर्यको, त्यागत लागत दुःख अति।
तोहि तजिवे को असमर्थ यह, वासव जो है वायुपति ॥१७॥

17. Desire cools down when peace of mind is attained through the advent of knowledge. The same expands to an unlimited extent when its connection is established with its highest objects. Hence Desire can never be satisfied by enjoyment or Desire

मरणासन्न कुत्ते को कुतियाके पीछे दौड़ते हुए देख कर कहना पड़ता है, कि कामदेव मरे हुएको भी मारता है ! [पृ० ३७ श्लोक १८

is only insatiable in its fulfilment. The proof of this lies in the person of Indra, the great king of the gods, who is totally unable to give up his kingdom of Swarga, although it is worn out by long, long ages having passed over it.

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ॥
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥१८॥

दुबला, काना और लँगड़ा कुत्ता, जिसके कान और पूँछ नहीं हैं, जिसके ज़ख्मों से राध बह रही है, जिसके शरीर में कीड़े किलबिला रहे हैं, जो भूखा और बूढ़ा है, जिसके गले में हाँडी का घेरा पड़ा है—कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ता है। कामदेव मरे हुए को भी मारता है ॥१८॥

जिस कुत्ते की ऐसी बुरी हालत है, वह कुत्ता भी मैथुन करने के लिये कुतिया के पीछे-पीछे दौड़ता है; तब मोटे-ताज़े मावा-मलाई और मिष्टान्न खानेवाले अपनी कामवासना को कैसे रोक सकते हैं? इसीसे बचने के लिये, ज्ञानी लोग अपनी देहको एकदम गला देते हैं, तरह-तरह के व्रत और उपवास करते हैं,

धूनी तपते हैं और शीत-घाम सहते हैं। कामदेव बड़ा बलवान् है। जो उसके क़ाबूमें नहीं आते, वे सबसे बलवान और सच्चे योद्धा हैं। वे भीष्म और अर्ज्जुन हैं।

18. The lean, blind and lame dog, without either ears or tail, with blood oozing out of its wounds and hundreds and thousands of worms sticking to his body, hungry and old, with the upper portion of a broken earthen vessel hanging round his neck, is pursuing the bitch. How cruel is Cupid to shoot his arrows at those who are already dead.

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥ १९ ॥

वह मनुष्य जो भीख माँग कर दिनमें एक समय ही नीरस अलोना अन्न खाता है, धरती पर सो रहता है, जिसका शरीर ही उसका कुटुम्बी है, जो सौ थेगलियों की गुदड़ी ओढ़ता है, आश्चर्य है कि ऐसे मनुष्य को भी विषय नहीं छोड़ते ॥१९॥

ऐसे मनुष्य जो दिन-भर में एक बार अलोना अन्न खाते हैं और वह भी माँग-ताँग कर; जिनके पास सोने के लिए पलँग और गद्दे तकिये नहीं, बेचारे पेड़ोंके नीचे या खुले मैदानमें घास-पात पर सो रहते हैं; जिनके नाते-रिश्तेदार कोई नहीं, उनका अपना शरीर ही उनका नातेदार है; जिनके पास पहननेको कपड़े नहीं, बेचारे ऐसी गूदड़ी ओढ़ते हैं, जिसमें सैकड़ों चीथड़े लटकते हैं—ऐसे लोगोंका भी विषय पीछा नहीं छोड़ते, तब धनियों का पीछा तो वे कैसे छोड़ने लगे, जहाँ उन्हें सब तरह के ऐशोआराम मिलते हैं।

संसारी लोग कितने ही दुःख, ताप और कष्ट क्यों न पावें; किन्तु उनका मन उस ऊँट की तरह है, जो काँटेदार वृक्षों को खाना पसन्द करता है; काँटेदार वृक्षों के खानेसे उसके मुँह से खून बहने लगता है, पर वह उनका खाना नहीं छोड़ता; इसी तरह जिन्हें विषयों का स्वाद आगया है, वे अनेक तरह के कष्ट भोगने पर भी उन्हें नहीं त्यागते; किन्तु जब उनमें विवेक आजाता है, उनमें सत-असत के विचार की शक्ति हो जाती है, तब उन्हें इनसे विरक्ति हो जाती है।

शिक्षा - विषय विष हैं। इनका त्याग ही सुख की जड़ है। जो विषयी हैं, उन्हें कहीं सुख नहीं है।

छप्पय ।

भीख अन्न इकबार, लौन बिन खाय रहतहूँ ।
फटी गूदरी ओढ़, वृक्ष की छांह गहतहूँ ।
घास पात कछु डारि, भूमि पर नित प्राति सोवत ।
राख्यो तन परिवार, भार यह ताको ढोवत ।
इह भाँति रहत, चाहत न कछु, तऊ विषय बाधा करत ।
हरि हाय २ तेरी शरण, आय पर्यो इन से डरत॥१९॥

19. A man may go a-begging for his food and get a tasteless meal once a day. He may have the earth only for his bed and his own body for his servant. His clothes may only consist of an old and dirty sheet with hundreds of rags hanging from it. But what a pity that the objects of pleasure do not desert even such a man !

स्तनौ मांसग्रन्था कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥
स्रवन्मूत्राक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥ २० ॥

स्त्रियोंके स्तन मांसके लौंदे हैं, पर कवियोंने उन्हें सोनेके कलशों की उपमा दी है। स्त्रियोंका मुँह

कोफंवा घर है, पर कवि उसे चन्द्रमा के समान बताते हैं और उनकी जाँघोंको जिनमें पेशाव प्रभृति बहते रहते हैं, श्रेष्ठ हाथी की सूँडके समान कहते हैं। स्त्रियों का रूप घृणायोग्य है, पर कवियों ने उसकी कैसी तारीफ़ की है!

स्त्रियों की छातियां जिन पर विषयी मरे मिटते हैं, जिनकी कवियों ने बड़ी-बड़ी प्रशंसायें की हैं, जिन्हें वे सोने के कलसों अथवा अनार और नारङ्गियों के समान बताते हैं—वास्तव में वे मांस की पोटली हैं। उनके मुख को वे चन्द्रमा के समान बताते हैं, पर वास्तवमें वे कफके आगार हैं। जिन जाँघों को वे गजवर की सूँड के समान बताते हैं, वास्तवमें वे मूत और सफ़ेदे के टपकने से लुगली रहती हैं। स्त्रियोंका शरीर सर्व्वथा निन्दा-योग्य है, उसमें प्रशंसा की कोई बात नहीं, पर अज्ञानी और मूर्ख विषयी उन पर मरे मिटते हैं। यह उनकी भारी भूल है!

महात्मा सुन्दर दास जी कहते हैं—

कामिनी को तन, मानु कहिये सघन वन।
वहाँ कोउ जाय, सो तौ भूले ही परत है॥
कुञ्जर है गात, कटि केहरी को भय जामें।
वेनी काली नागिनीऊ, फनिकूं धरत है॥

कुच हैं पहार जहाँ, काम चोर बसैं तहाँ।
साँधि के कटाक्ष बाण, प्राण कूँ हरत हैं॥
सुन्दर कहत, एक और डर जामें अति।
राक्षसी बदन, खाउँ-खाउँ ही करतु है॥ १॥

कामिनी को अङ्ग अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम-रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं॥
हाड़ माँस मज्जा मेद, चामसुँ लपेटि राखे।
ठौर-ठौर रकत के, भरेइ भण्डार हैं॥
मूत्रहु पुरीष आँत, एकमेक मिलि रहीं।
और ही उदर माँहि, विविध विकार हैं॥
सुन्दर कहत, नारी नखशिख निन्दा रूप।
ताहि जो सराहै, सो तौ बड़ोइ गँवार हैं॥२॥

जो नारी ऐसी अपवित्र है, जिसके देखने मात्र से विष चढ़ जाता है, जो जीते जी कलेजा खाती है और मरे पर नरक ले जाती है और जिसके मिथ्या प्रेम का भी कोई ठिकाना नहीं, जो करवट बदलनेमें पराई हो जाती है, उस नारी पर भूलना, वास्तव में जीवन वृथा खोना है।

शिक्षा—जो परमात्मा के दर्शन करना चाहें, जो सदा सुख भोगना चाहें, जो भवबन्धन से पीछा छुड़ाना चाहें, उन्हें कामिनी और काञ्चन में आसक्ति न रखनी चाहिये। जो इनमें मन लगाये रहते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती—भगवान् उनसे सदा दूर रहते हैं।

छप्पय ।

कुच आमिष की गाँठ, कनकके कलश कहत छवि ।
मुखहू कफ को धाम, कहत शशि के समान छवि ।
झरत मुत्र अरु धातु, भरी दुर्गन्ध ठौर सब ।
ताकौ चंपकवेल कहत, रस रेल ठेल दब ॥
यह नारि निहारी निन्दतन, वहूँके विषयी बावरे ।
याकों वढाय, वाकों विरद, बोले बहुत उतावरे ॥२०॥

20. The breasts of a woman which are nothing but lumps of flesh, are likened by poets to a pair of vessel made of gold. Her mouth which is only a depository of saliva is likened to the moon. Her thighs although wet with falling drops of urine are likened to the trunk of an elephant. Oh! how contemptible is the person of a woman which is so servilely flattered by the poets!

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने
स मीनोप्यज्ञानाद्वडिशयुतमश्नातु पिशितम् ॥
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ २१ ॥

अज्ञानवश, पतङ्ग दीपक की लौ पर गिरकर अपने तईं भस्म कर लेता है, क्योंकि वह उसके परिणाम को नहीं जानता; इसी तरह मछली भी काँटे के मांस पर मुँह चला कर अपने प्राण खोती है, क्योंकि वह उससे अपने प्राण-नाश की बात नहीं जानती; परन्तु हम लोग तो अच्छी तरह जान-बूझ कर भी, विपद्मूलक विषयों की अभिलाषा नहीं त्यागते। मोह की महिमा कैसी विस्मयकर है! ॥२१॥

पतङ्ग दीपक के रूप पर मरता है, उसके प्रेम में रँगा रहता है, इसलिये उसको आलिङ्गन करने के लिये उस पर झपटकर गिरता है और अपना नाश कराता है। पतङ्गको ज्ञान नहीं है, कि इस पर गिरने से मेरी मौत हो जायगी। इसी तरह मछली मछुएके लगाये हुए काँटे के मांस पर मुँह लपकाती है और कण्ठमें काँटा लगनेसे मर जाती है; क्योंकि वह नहीं जानती, कि यह मेरी मृत्युका सामान है। पतङ्ग और मछली तो अज्ञानवश अपनी जान खोते हैं; पर आश्चर्य तो यह है, कि मनुष्य जिसे भगवान् ने समझ दी है, जो जानता है कि विषयों की कामना आफ़त की जड़ है, विषयोंमें सुख नहीं विपज्जाल है, विषय विषसे भी अधिक दुखदायी हैं, तोभी वह विषयों की इच्छा करता है। इससे कहना पड़ता है, कि मोह की माया बड़ी कठिन है।

महात्मा कबीर दास कहते हैं—

शंकर हूँ ते सबल है, माया या संसार।
अपने बल छूटे नहीं, छुड़ावे सिरजनहार॥

21. The moth may burn itself by falling over the flame of a lamp, because it is ignorant of the result of its action. The fish may swallow the bait hung by a fisherman, because it is similarly ignorant. How wonderful should the force of attachment be, that we, being thoroughly conversant with the result of action, do not care to renounce the network of desires which brings distress and misery in the end!

विसमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम्॥ २२॥

खाने के लिये फलों की इफ़रात है, पीने के लिये मीठा जल है, पहननेके लिये वृक्षों की छाल हैं; फिर हम धनमद से मतवाले दुष्टों की बातें क्यों सहें?॥२२॥

जबकि भगवान् ने हमारे लिये खानेको फल-ही-फल पैदा कर दिये हैं, पीनेको मीठा शीतल जल जगह-

जगह भर दिया है,पहननेके लिये दरख्तों की छाल पैदा कर दी है ; फिर हमें क्या ज़रूरत, जो धनसे मतवाले लोगों के ताने और कठोर वचन सहें ?

मनुष्य को सन्तोष नहीं, उसे तृष्णा नहीं छोड़ती ; इसी से वह विषयों के भोगने की लालसा से धनियों की खुशामद करता है, उनकी टेढ़ी-सूधी सुनता है, अपनी प्रतिष्ठा खोता है, निरादर और अपमान सहता है। अगर वह सन्तोष करले, तो उसे ऐसे दुष्टों और धन-मद से मतवाले शैतानों की खुशामद क्यों करनी पड़े ? अपनी मानहानि क्यों करानी पड़े ? परमात्मा इन शैतानों से बचावे ! एक तो नातजरुवेकार और तंगदिल लोग वैसे ही शैतान होते हैं, पर जब उन पर दौलत का नशा चढ़ जाता है, तब उनकी शैतानी का क्या ठिकाना ? उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं और खूब कहते हैं—

नशा दौलत का बद अतवार को,जिस आन चढ़ा ।
सर पै शैतान के, एक और भी शैतान चढ़ा ॥

शिक्षा—जिसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं, वह किसी की खुशामद क्यों करेगा ? वह अपना मान क्यों खोयेगा ? निस्पृह के लिये तो जगत् तिनके के समान है। इसलिये, सुख चाहो तो इच्छाओं को त्यागो।

दोहा ।

भूमि शयन वल्कल वसन, फल भोजन जल पान ।
धनमद माते नरन को, कौन सहत अहमान ॥२२॥

22. While there is plenty of fruit to eat, delicious water to drink, the surface of the earth to sleep upon and the bark of trees to wear, we should not care to bear the taunts of evil-minded persons whose senses have all been taken prisoner by newly-got wealth

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥२३॥

कोई तो ऐसे बड़े दिलवाले लोग हुए, जिन्होंने प्राचीनकालमें इस जगत् की रचना की ; कुछ ऐसे हुए जिन्होंने इस जगत्को अपनी भुजाओं पर धारण किया ; कुछ ऐसे हुए जिन्होंने समग्र पृथ्वी जीती और फिर तुच्छ समझ कर दूसरों को दान कर दी ; और कुछ ऐसे हैं जो चौदह भुवन का पालन करते हैं । जो लोग

थोड़े से गाँवोंके मालिक होकर, अभिमान के ज्वरसे मत-वाले हो जाते हैं, उनके सम्बन्ध में हम क्या कहें ?॥२३॥

इस जगत् में ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने जगत् की रचना कर डाली, पर उन्हें ज़रा भी अभिमान न हुआ। कुछ ऐसे लोग भी हुए, जिन्होंने इसे अपनी भुजाओं पर रक्खा, पर अभिमान न किया। कुछ ऐसे हुए, जिन्होंने सारी दुनिया को जीत लिया और फिर इसे तुच्छ समझ कर दान भी कर दिया, पर उन्हें अभिमान न हुआ। कोई ऐसे हैं, जो संसारका पालन करते हैं और इस पर आधिपत्य रखते हैं, पर उन्हें ज़रा भी घमण्ड नहीं। फिर वे लोग जो चन्द गाँवों के मालिक बन जाते हैं, घमण्ड के मारे क्यों ऐंठने लगते हैं ?

अच्छे आदमी धनैश्वर्य्य और प्रभुता पाकर कभी अहङ्कार नहीं करते। नीच लोग ही ज़रा-ज़रा सी बातों पर घमण्ड करने लगते हैं। अभिमान महाअन-र्थों का मूल है। जिसे अभिमान नहीं, वही बड़ा आदमी है, उसी पर परमात्माकी कृपा रहती है। किसी ने खूब कहा है—

है तजस्सुस शर्तयाँ, मिलने को क्या मिलता नहीं।

है खुदी जबतक इन्साँ में, खुदा मिलता नहीं॥

सन्तोग शर्त है, संसार में क्या नहीं मिलता? जब तक मनुष्य में ख़ुदी या अभिमान है, तब तक ईश्वर नहीं मिलता। जहाँ अभिमान गया, मैं और तू का झगड़ा मिटा, कि भगवान् दीखे।

अभिमानियों का नशा उतारने के लिये उस्ताद ज़ौक़ ने भी ख़ूब ही कहा है:—

दिखा न जोशो ख़रोश इतना, ज़ोर पर चढ़ कर।
गये जहान में दरिया, बहुत उतर चढ कर॥

हे मनुष्य! ज़ोर में आकर इतना जोश ख़रोश न दिखा, इस दुनिया में बहुत से दरिया चढ़-चढ़ कर उतर गये,—कितने ही बाग़ लगे और सूख गये।

महात्मा कबीरदास कहते हैं—

धरती करते एक पग, करते समन्दर फाल।
हाथों परवत तोलते, ते भी खाये काल॥
हाथों परवत फाड़ते, समुन्दर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोई गर्व कराय॥

छप्पय।

भये जगत में धन्य, धीर जिन जगत रच्यो है।
धाहू धारी शीश, अजा वह नाहिं लच्यो है।

काहू दीनों दान, जीत काहू बस कीनो।
भुवन चतुर्दश भोग कियौ, काहू जस लीनों।
इमि अधिक एकसों एक मे, तुम हो तिनमें तुच्छवित।
दश वीस नगर के नृपति ह्वै, यह मदको ज्वर तोहि कित ॥२३

23. There were many large-hearted people in the past who helped in the early creation of the world. There were others who maintained it by the force of their arms and still others who won the whole earth and then gave it away to the needy valuing it no better than a straw. There are some even now in this world who enjoy the overlordship of the fourteen regions. What should we say of the fever of vanity contracted by persons who own only a few villages ?

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नता:
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहा: २४

अगर तू राजा है, तो हम भी गुरुकी सेवा से सीखी हुई विद्याके अभिमान से बड़े हैं। अगर तू अपने धन और वैभव के लिये प्रसिद्ध है, तो कवियोंने हमारी विद्या

की कीर्त्ति चारों ओर फैला रक्खी है। हे मानभञ्जन करनेवाले, तुझमें और हममें ज़ियादा फ़र्क़ नहीं है। अगर तू हमारी ओर नहीं देखता, तो हमें भी तेरी परवा नहीं है ॥२४॥

अगर तुझे अपने बल और धनका अभिमान है, तो हमें भी अपनी विद्या का अभिमान है। तुझमें और हम में कोई बड़ा भेद नहीं है। यदि तुझे हमारी ज़रूरत नहीं है, तो हमें भी तेरी ज़रूरत नहीं है. क्योंकि हमें तुझसे कुछ लेना नहीं।

छप्पय ।

तुम पृथ्वीपति भूम भरे, अभिमान विराजत ।
हम पाई गुरु गेह वुद्धि, वल ताके गाजत ।
तुम धनसों विख्यात, सुकवि गावत कछु पावत ।
हम यशसों विख्यात, रहत निशि द्यौस पढ़ावत ।
तुम हमहिं बीच अन्तर बड़ो, देखो सोच विचारचित ।
एते पर जो मुख फेरहो, तौ हमकों एकान्तहित ॥२४॥

24. If thou art a king, we too are great in our pride of knowledge learnt by serving our teacher. If thou art famous for thy power and riches, the poets have proclaimed

the famo of our knowledge far and wide. Thus O thou! who dost not honour anybody, there is not much difference between us both. If thou dost not care to look towards us, we too are absolutely without any desire to court thy attention.

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभुजाम् ।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥२५॥

सैकड़ों हज़ारों राजा इस पृथ्वी को अपनी-अपनी कह कर चले गये, पर यह किसी की भी न हुई; तब राजा लोग इसके स्वामी होने का घमण्ड क्यों करते हैं? दुःख की बात है, कि छोटे-छोटे राजा छोटे-से-छोटे टुकड़े के मालिक होकर अभिमानके मारे फूले नहीं समाते! जिस बात से दुःख होना चाहिये, मूर्ख उससे उलटे खुश होते हैं ॥२५॥

इस पृथ्वी पर रावण, सहस्रबाहु प्रभृति एक-से-एक बढ़कर राजा हो गये, उन्होंने त्रिलोकी अपनी अङ्गुली पर नचा मारी। वह कहते थे, कि हमारे बराबर जगत् में दूसरा कोई नहीं है। यह पृथ्वी सदा हमारी ही

रहेगी; पर वे सब एक दिन इसे छोड़ कर चल बसे, यह उनकी न हुई, वे इसे सदा न भोग सके। तब आज-कल के छोटे-छोटे राजा, जो अपने तईं पृथ्वीपति समझ कर अभिमान के नशे में चूर रहते हैं, इसके लिये लड़ते हैं, खून ख़राबी करते हैं, यह क्या उनकी अज्ञानता नहीं है? उनकी यह छोटी सी प्रभुता—मल्लिकाई सदा-सर्वदा न रहेगी, यह बिजली कीसी चमक और बादल कीसी छाया है। इस पर घमण्ड करना बड़ी भूलकी बात है।

महात्मा कबीर कहते हैं:—

चहुँ दिशि पाका कोट था, मन्दिर नगर मँझार।
खिरकी-खिरकी पाहरू, गज बँधा दरबार॥
चहुँ दिशि तो योधा खड़े, हाथ लिये हथियार।
सब ही यह तन देखता, काल ले गया मार॥
आस पास योधा खड़े, सबै बजावें गाल।
मंझ महल ते ले चला, ऐसा परबल काल॥

यह दुनिया नापायेदार है, मनुष्य-शरीर का कोई ठिकाना नहीं; फिर भी मनुष्य के अभिमान की सीमा नहीं। थोड़ीसी विषय-सम्पत्ति पर वह इतना इतरा उठता है, कि ईश्वरको भी माल नहीं समझता।

उस्ताद ज़ौक़ ने ठीक ही कहा है—

मौत ने कर दिया नाचार, वगर्ना इन्साँ।
है वह खुद्बीं, कि खुदाका भी न क़ायल होता॥

मनुष्य के घमण्ड का कुछ ठिकाना है—किसी को कुछ नहीं समझता। मौतने इसे लाचार कर रक्खा है, नहीं तो यह ईश्वर को भी कुछ न समझता।

शिक्षा—अगर अपना भला चाहते हो तो अभिमान को त्यागो, यह बड़ा भारी शत्रु है। जिन्होंने इसकी संगति की उनका नाश ही हुआ। अभिमान से ही लंका-धिपति रावण का नाश हुआ, जिसने त्रिलोकी को अपने अधीन कर रक्खा था, जो देवताओं से सेवा और हवा और पानी से टहल कराता था। अभिमान से ही मध्याह्नके मार्त्तण्डकी भांति तपते हुए देहली के मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की सल्तनत की जड़ हिल गई, मुग़लिया ख़ान्दान से बादशाहत विदाही हो गई। अभिमानने ही जर्मन कैसर को राव से रंक बना दिया, जिसने छोटे से देश का राजा हो कर भी, सारी पृथ्वी को चार साल तक अपनी उँगली पर नचाया। आइयो, इन दृष्टान्तों को ध्यानमें रख कर, अपने प्रबल शत्रु अभिमान का नाश करो।

25. Why should kings feel so much pride in the ownership of the earth, which has successively been owned by hundreds of

kings without the break of even a second.
It is a pity that petty kings who possess even a very small portion of it, foolishly find pleasure in the possession of their estates while really they ought to grieve over it as their power is not going to endure for ever.

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं न त्वणु-
रङ्गीकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गणैर्भुज्यते ।
तद्दद्युर्ददतेऽथ वा न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं
धिग्धिक्तान्पुरुषाधमान्धनकणं वांछंति तेभ्योऽपि ये ॥२६॥

अव्वल तो यह पृथ्वी स्वयं ही बड़ी नहीं है। यह मिट्टी का सा लौंदा है, जो चारों ओरसे पानीसे घिरा हुआ है। दूसरे सैकड़ों हज़ारों राजाओंने आपसमें अनेक लड़ाइयाँ लड़-लड़कर इसके भागों पर अपना-अपना कब्ज़ा कर रखा है। ऐसे क्षुद्र और संकीर्णहृदय राजाओं को जो दानी समझते हैं और उनके मुँहकी ओर ताकते हैं, कि वे कुछ देंगे, ऐसे नीच लोगों को धिक्कार है! ऐसे तुच्छ और दरिद्रियोंसे धन पानेकी आशा करना व्यर्थ है ॥२६॥

अव्वल तो पृथ्वी कोई चीज़ ही नहीं है। फिर; जो ज़रासा मिट्टीका लौंदा है, वह भी चारों ओर से सीमा-बद्ध है, चारों ओर उसके समुद्र है। फिर इस क्षुद्र पृथ्वी

को भी अनेक राजाओंने आपस में युद्ध कर करके अपने-अपने अधिकारमें कर रक्खी है। ज़रासी चीज़के हज़ारों टुकड़े हो गये हैं। इन टुकड़ों के मालिकोंको जो लोग बड़े और दानी समझते हैं और उनसे कुछ पानेकी आशा करते हैं, उनको बारम्बार धिक्कार है! क्योंकि उन नामके भूपतियों के पास रक्खा ही क्या है। वे स्वयं दरिद्र हैं। जब वे स्वयं दरिद्र और मुहताज हैं, तब वे किस की आशा पूरी कर सकते हैं? इसलिये ऐसे क्षुद्रोंका मुँह ताकना नीचोंका काम है। मुँह उसका ताकना चाहिये, जो किसी लायक़ हो। मनुष्यको जो माँगना हो, सर्वशक्तिमान् भगवान्से माँगना चाहिये, वही सब की इच्छा पूरी कर सकता है। क्षुद्र धनियोंकी खुशा-मदमें समय गँवाना, वृथा जन्म खोना है। वे आप दीन हैं। उनकी इच्छायें क्या पूरी होगई हैं? अमीर ग़रीब सभी ज़रूरतें रखते हैं। इस लिये दोनों ही दीन हैं। अमीरों की ज़रूरतें ग़रीबों से ज़ियादा हैं, इस-लिये वे दीनातिदीन हैं। ऐसे दीनों से भी जो माँगते हैं, वे बड़े ही निर्बुद्धि हैं। अगर माँगना ही है तो बाद-शाहों के बादशाह से माँगो--

महात्मा कबीर दास कहते हैं—

कबिरा जग की का कहूँ, जो भव बूड़े दास।
पारब्रह्म पति छाँड़ि के, करै मनुष्य की आस॥

रामहिं थोरा जानि के, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, माया के आधीन॥
राम धनी सिर पर खड़ा. कहा कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छांड़े पास॥
दास दुखी तो हरि दुखी; आदि अन्त तिहुँ काल।
पलक एक में परगटे, पलमें करै निहाल॥
जाको गाँठी राम है, ताके हैं सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबैं, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥

बहुत से मूर्ख इन धनमत्तों से यहाँ तक कह बैठते हैं,—"हुज़ूर! हम बड़े संकट में हैं, हमारी नाव मँझधार में है, उसे पार लगाइये।" यह बड़ी भद्दी भूल की बात है। नावका पार लगाना मनुष्य के हाथ नहीं, डूबती हुई नावको वह सर्वशक्तिमान् ही पार लगा सकता है; अत: बुद्धिमान लोग उसीके भरोसे रहते हैं, वह तुच्छ मनुष्यों के ऐहसान सिर पर नहीं लेते।

उस्ताद ज़ौक़ ने क्या ख़ूब कहा है :—

अहसाने नाख़ुदा के, उठाये मेरी बला।
किश्ती ख़ुदा पै छोड़ दूँ, लंगर को तोड़ दूँ।

माँझी के अहसान मेरी बला उठाये, मैं तो अपनी नाव को ईश्वर का नाम लेकर छोड़ दूँगा और उसका लङ्गर तोड़ दूँगा।

छप्पय ।

इक मृतिकाको पिण्ड, रहत जलमाँहि निरन्तर ।
सोऊ सब ही नाहिं, तनकसौ ताहूमें डर ।
करत हजारन जंग, भूप तब भोग करत वित ।
मिटत आपनी प्यास, दानको होत कहा चित ।
ऐसे दरिद्र दुखसों भरे, तिनहूँ सा जो चहत धन ,
धिकार जन्म वा अधमको, सदा सर्वदा लीन मन ॥२६

26. In the first place this earth, which is surrounded on all sides by a line of water, is not large enough itself. Secondly, it is divided and owned by multitudes of kings after fighting hundreds of battles. These, small and narrow-minded kings are waited upon by the needy whose minds are always in suspense whether they will be given something or not Fie on the mean persons who hope to get a little bounty from such givers who are so small and poor in heart themselves.

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिवद्धवुद्धयः ।
नृपसद्मनि नाम के वयं कुचभारानमिता न योषितः ॥२७

न तो हम नट या बाज़ीगर हैं, न हम नचैये गवैये

हैं, न हम को चुगलखोरी आती है, न हमें दूसरोंको बर्बादीकी बन्दिशें बांधनी आती हैं, न हम स्तनभारा-नम्र स्त्रियां ही हैं; फिर हमारी पूछ राजाओंके यहां क्यों होने लगी? ॥२७॥

राजाओंके दरबारोंमें नटों, बाज़ीगरों, नाचने-गाने वालों तथा पराये नाशको बदबीरें करनेवालों, चुग़ल-खोरी करनेवालों, इधर की उधर लगानेवालों अथवा ऐसी सुन्दरियोंकी पूछ होती है, जो रूपवती हैं और जिन की कमर उनके स्तनों के भारसे लची जाती है,—हम में इनमें से एक भी बात नहीं, फिर हमारा प्रवेश राजसभामें कैसे हो सकता है? वहां तो इन्हीं की पूछ है, इन्हींका आदर है, जो उनकी विषय-वासनाओं को पूरी करते हैं।

दोहा।

नट भट विट गायन नहीं, नाहिं वादिनके माहिं।
कौन भाँति भूपति मिलन, तरुणीभी हम नाहिं ॥२७॥

27. We are neither jugglers nor dancers nor musicians, nor are our minds well-versed in scheming other people's fall. We are not even women walking low with the burden of their breasts. Then what

should be our business in the palaces of kings who welcome only such persons as are ready to help them in gratifying their desires ?

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा
नहो कष्टं सापि प्रतिदिनमऽधोऽधः प्रविशति ॥२८॥

पहले समयों में विद्या केवल उनलोगोंके लिए थी, जो मानसिक क्लेशोंसे छुटकारा पाकर चित्त की शान्ति चाहते थे। इसके बाद वह विषय-सुख चाहनेवालोंके काम की हुई। अब तो राजा लोग शास्त्रों को सुनना ही ही नहीं चाहते, वे उससे पराङ्मुख होगये हैं, इसलिए यह दिन-ब-दिन रसातल को चली जाती है। यह बड़े ही दुःख की बात है ॥२८॥

पहले ज़माने में जो विद्या शान्तिकामी लोगों के अशान्त चित्तों को शान्त करने, उनकी मनोवेदनाओं को दूर करने, उनको शोक-तापकी आगमें जलने से बचाने के काम आती थी, होते-होते वह विद्या विषय-सुख भोगने का ज़रिया होगई। लोग भाँति-भाँति की विद्याएँ सीखकर राजाओं और धनियों को खुश करते और उन

वे फल पाकर स्वयं विषय-सुख भोगते थे। यहाँ तक तो खैर थी, किन्तु अब राजालोग ऐसे होगये हैं, कि वह विद्या और विद्वानोंकी ओर नज़र उठा कर भी नहीं देखते, पण्डितों से धर्मशास्त्र नहीं सुनते, इसलिए अब कोई विद्या नहीं पढ़ता। क़दर न होनेसे विद्या अब अधोगति को प्राप्त होती जाती है। क्या यह दुःख का विषय नहीं है?

दोहा।

विद्या दुखनाशक हती, फेर विषय सुख दीन।
जात रसातल को चली, देखि नृपन्ह मतिहीन ॥२८॥

28. Formerly learning was only meant for the pacification of the mental troubles of those who longed for peace of mind alone. Later on, it became an instrument for pleasure-seeking persons to gain the objects of their pleasure. Now-a-days the kings having become unmindful of listening to the holy books which were expounded to them by learned men, it is painful to think that the same learning is daily sinking down and down into oblivion.

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविषये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥ २६ ॥

प्राचीन कालमें ऐसे पुरुष हुए हैं, जिनकी खोपड़ियों की माला बनाकर स्वयं शिवने शृंगारके लिए अपने गले में पहनीं। अब ऐसे लोग हैं, जो अपनी जीविका-निर्वाह के लिए सलाम करने वालोंसे ही प्रतिष्ठा पाकर, अभिमानके ज्वर (मद) से गरम हो रहे हैं ॥२८॥

दोहा ।

ऐसहू जग में भये, मुण्डमाल शिव कीन ।
धनलोभी नर नवत लखि, तुमको मद ज्वरदीन ॥२६

29. There have been even such great men before, that their skulls were made into a wreath and worn round his neck for the sake of adornment by the great Shiva Himself. What should we think of the boundless vanity of people who become so proud of their position now-a-days even if they are greeted respectfully by a few persons desirous of conducting their living somehow or other ?

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्ते त्वां धनाढ्या मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा
मय्यप्यास्था न चैतत्त्वयि मम सुतरामेषराजन्गतोस्मि ॥३०

यदि तुम धनके स्वामी हो, तो हम वाणीके स्वामी हैं। यदि तुम युद्ध करनेमें वीर हो, तो हम अपने प्रति-पक्षियोंसे शास्त्रार्थ करके उनका मद-ज्वर तोड़ने में कुशल हैं। यदि तुम्हारी सेवा धन-कामी करते हैं, तो हमारी सेवा अज्ञान-अन्धकार का नाश चाहनेवाले, शास्त्र सुनने के लिए करते हैं। यदि तुम्हें हमारी ग़रज़ नहीं है, तो हमें भी तुम्हारी ग़रज़ नहीं है। लो, हम चलते हैं ॥३०॥

छप्पय।

तुम अवनी के ईश, ईश हम हूँ वाणी के।
तुम हौ रण में धीर, वीर गाढे अति जीके।
त्योंही विद्यावाद करत, हमहुँ नहिं हारे।
प्रतिपक्ष के मान मारे, अपने विस्तारे।
सब लोभी नर सेवत तुम्हें, हमको शिव श्रोता भले।
तुमको न हमारी चाह, तौ हमहुँ ह्यांसे उठ चले ॥३०॥

30. O King, if thou art the lord of wealth, we too are the lord of speech. If thou art brave in fight, our pluck too is unanswerable in breaking down the vanity of our adversary in literary discussions. If thou art served by men hankering after wealth, we too are waited upon by people who are desirous of listening to our learned discourses for the sake of dispelling the ignorance from their minds. If thou dost not care for us, we too cherish no regard for thee. Look, we are off !

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥३१॥

जब मैं बहुत थोड़ासा जानता था, तब हाथीके समान मद से अन्धा हो रहा था; मैं समझता था, कि मैं सर्व्वज्ञ हूँ। जब मुझे बुद्धिमानों की सुहबत से कुछ मालूम हुआ; तब मैंने समझा, कि मैं कुछ भी नहीं जानता। मेरा झूठा मद ज्वर की तरह उतर गया ॥३१॥

जो लोग बहुत थोड़ा ज्ञान रखते हैं, वे समझते हैं कि हम सब जानते हैं—दुनियाकी सारी अक़ल हममेंही

है, हमारे सिवा और सब पशु हैं। अल्पज्ञता के कारण उन्हें बड़ा घमण्ड रहता है; किन्तु जब वे बुद्धिमान और विद्वानोंकी सुहबत में आते हैं और कुछ सीख जाते हैं; तब वे समझते हैं, कि हमतो कुछ भी नहीं जानते थे, हमारा अभिमान मिथ्या था। उस समय उनका अभिमान हवा हो जाता है।

उस्ताद ज़ौक़ ने भी ठीक ऐसीही बात कही है:—

हम जानते थे, इल्म से कुछ जानेंगे।
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी॥

31. As long as I knew only very little I was blind with madness like an elephant and my mind was filled with the idea that I knew all. When I came to learn a little by intercourse with wise men, my false conceit vanished away with the realisation that I knew nothing.

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो
भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ।
इदानीं स्वःसिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः
सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः॥३२॥

ज़ेवरों से सजी हुई स्त्रियोंके भोगने-योग्य जवानी तो चली गई। चिरकाल तक विषयोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते हम थक गये। अब हम पवित्र जाह्नवी-तटपर, (ललचाने वाली) स्त्रियोंकी निन्दा करते हुए शिव शिव जपेंगे ॥३२॥

जिस पुरुषको स्त्रियों की असलियत मालूम होजाने से विरक्ति होगई है, वह कहता है—अब हमारी स्त्रियोंके भोगने योग्य अवस्था—जवानी चली गई। अब वह लौट कर आयेगी नहीं, और यह बुढ़ापा जायगा नहीं। यह बला जवानीमें ही अच्छी लगती है—यह बीमारी जवानीमें ही ज़ोर करती है।

किसीने कहा है :—

इश्क़ का जोश है जब तक, कि जवानी के हैं दिन।
यह मरज़ करता है शिद्दत, इन्हीं अय्याम में ख़ास ॥

अब तो बुढ़ापे का दौर दौरा है, अब हम सावधान हो गये हैं। हमने बेवक़ूफ़ी छोड़ दी है। हम बहुत दिनों तक विषयोंमें लीन रहे, बहुत कुछ विषय-भोग भोगे। अब हम उनसे थक गये, उनसे हमारा जी जब गया, उनसे हमें कुछ भी सुख नहीं मिला। इसलिए अब हम गंगाजीके किनारे बैठकर, सुन्दरियोंकी ममता छोड़, शिव से मोह करेंगे और दिन-रात उन्हीं का पवित्र

वाख्यापकारी नाम जपेंगे, जिससे हमारा अन्तकाल तो सुधर जाय।

दोहा।

रमणकाल यौवन गयो, थक्यो भ्रमत संसार।

देहुँ गंगतट शेष वय, शिव शिव जपत निसार ॥३२॥

32. The time of our youth, when we were fit for enjoying the company of jewel-bedecked women, has gone. We are tired of hankering after the pleasures of the world for a long time. Now we will pass our days on the holy banks of the heavenly Ganges cursing the misleading guiles of women and repeating the name of the Great Shiva in prayer.

मानं म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ॥
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः-
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥३३॥

जब लोगों में इज्जत-आबरू न रहे, धन नाश हो जाय, याचक लौट-लौट कर जाने लगें, भाई-बन्धु, स्त्री पुत्र और नाते-रिश्तेदार मर जायँ, तब बुद्धिमान को

चाहिए, कि किसी ऐसे पर्वत की गुहाके कोनेमें जा बसे, जिसके पत्थर गंगाजी के जलसे पवित्र हो रहे हों ॥३२॥

जब लोगोंमें अपना मान न रहे, लोग नफ़रत की नज़रसे देखने लगें, अपनी धन-दौलत जाती रहे, जो याचक पहले कुछ पाते थे किन्तु अब निर्धनता के कारण विमुख हो होकर लौट जाते हों, भाई-बन्धु, स्त्री पुत्र प्रभृति नातेदार दूसरी दुनियाको चले गये हों, तब तो बुद्धिमान को चाहिए कि संसार को त्याग दे, इस में मोह न रक्खे। किसी ऐसे पहाड़की गुफा में जा रहे, जिसके पत्थरों को पवित्र गंगाजल पखार-पखार कर पवित्र करता हो। ऐसी हालतमें संसार में रहकर वृथा समय खोना है। कमसे कम उस समय तो एकान्त में बैठकर, सब तरहकी आशा-तृष्णा छोड़ कर, भगवान्‌के चरणकमलों में मन लगावे।

दोहा।

गयो मान यौवन सुघन, भिक्षुक जात निराश।

अब तो मोकों उचित यह, श्रीगंगा तट बास ॥३३॥

33. When all our respect has gone, our riches have flown away, when the poor and the needy who came to us for help before and were given what they wanted have

begun to be sent away with refusal, when all our relations and dear ones havs left this world, it is but desirable for a wise man to take up his abode somewhere in the corner of some mountain-cave whose stones are washed by the holy waters of the Ganges.

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहु हा
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय क्लेशकलितम् ॥
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणे
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥ ३४ ॥

हे मलिन मन! तू पराये दिलको प्रसन्न करने में किसलिए लगा रहता है? यदि तू तृष्णाको छोड़कर सन्तोष करले, अपने में ही सन्तुष्ट रहे, तो तू स्वयं चिन्तामणि-स्वरूप हो जाय। फिर तेरी कौनसी इच्छा पूरी न हो? ॥३४॥

मन ही सब कामों का कर्त्ता है, सभी इन्द्रियाँ मन के ही अधीन हैं—वे मन की ही अनुगामिनी हैं। मनही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मनुष्य मन से ही पाप-पुण्य और दुःख-सुख प्रभृति का भागी होता है। मन ही मनुष्यको बुरा-भला, साधु-असाधु सब कुछ बना देता है। मन की वृत्ति सुधरने से ही, मनके वासनाहीन होने

ही हो, सब कुछ त्यागने से हो, वह आत्मसाचात्कार के योग्य होजाता है ; इसीलिए कोई ज्ञानी पुरुष मनको सम्बोधन करके कहता है ,—

अरे मन ! तू स्वयं तो मलिन और दुःखके भारसे दबा हुआ है; फिर तू औरोंके दिल खुश करनेकी इतनी कोशिशें क्यों करता है, क्यों आफतें उठाता है, क्यों मान खोता है, क्यों अपमान सहता है ? इससे तुझे क्या लाभ होगा ? मेरी बात माने तो तू इच्छाको त्याग दे, किसी भी चीज़ की इच्छा मत रख, तब तुझे शान्ति मिलेगी—परमानन्द की प्राप्ति होगी। जब तेरा दिल चिन्तामणि की भाँति स्वच्छ हो जायगा, जब तू अपने स्वरूपको पहचान जायगा, तब तुझे आत्म-साचात्कार हो जायगा, तब तुझे ब्रह्मज्ञान हो जायगा, तब तू ब्रह्मके प्रेममें लीन हो जायगा, हर्ष-विषाद शोक-मोह तेरे पास न आवेंगे, अष्टसिद्धि नवनिद्धि तेरे सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी। तब तेरी कोई अभिलाषा पूरी होनेसे बाक़ी न रहेगी। इसी लिये कहते हैं, कि तू दूसरोंको राज़ी करने की अपेक्षा अपने तईं ही राज़ी कर, इससे तुझे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होगी, जिसके समान त्रिलोकी में और कोई नहीं है। उस समय तुझे और कुछ अच्छा न लगेगा। वही वही अच्छा लगेगा।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

प्रीतम छवि नयन बसी, पर छवि कहाँ समाय ।
भरी सराय "रहीम" लखि, आप पथिक फिरजाय ॥

दोहा ।

तुही रीझत क्यों नहीं, कहा रिझावत और ।
तेरेही आनन्दसे, चिन्तामणि सब ठौर ॥ ३४ ॥

34. O my unhappy mind, why dost thou try to enter into the hearts of others by doing thy utmost to please them while thou art thyself heavy with the burden of afflictions. If thou becomest contented by giving up thy desires, wilt not thou gain all thou wantest when all the good qualities of a pure mind are produced within thyself like a Chintamani which has the power of giving everything that a man desires ?

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतांताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥ ३५ ॥

विषयोंके भोगने में रोगों का डर है, कुल में दोष होने का भय है, धनमें राजका भय है, चुप रहनेमें

दीनता का भय है, बल में शत्रुओंका भय है, सौन्दर्यमें बुढ़ापे का भय है, शास्त्रोंमें विपक्षियोंके वाद का भय है, गुणोंमें दुष्टोंका भय है, शरीरमें मौत का भय है; संसारकी सभी चीज़ोंमें मनुष्यों को भय है। केवल "वैराग्य" में किसी प्रकार का भय नहीं है॥३५॥

यदि मनुष्य विषय-सुखोंको भोगता है, तो उसे रोगों का भय रहता है। यदि चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेपन किया जाता है, तो वादी होजाती है। यदि स्त्री से मैथुन किया जाता है, तो बल घटता है और बहुत करनेसे क्षय रोग हो जाता है। यदि उच्च कुलमें जन्म होता है, तो सदा उसके पतन या उसमें कोई दोष होने का डर लगा रहता है, क्योंकि कुल में किसीके भी दुरा-चारी होनेसे कुलका नाम बदनाम हो जाता है अथवा प्लेग वग़ैरः के होनेसे कुलका नाम ही डूब जाता है। इसी तरह अधिक धन होनेसे राजा का डर लगा रहता है, कि कहीं राजा सारा धन न छीन ले। चुप रहने में अप्रतिष्ठा और दीनताका भय रहता है, क्योंकि चुप रहने वालेको सभी दीन-हीन समझ लेते हैं। संग्राम में शत्रुओंका भय रहता है। यदि सूरत सुन्दर होती है, तो सूरतके बिगड़ जानेका भय रहता है; बुढ़ापे में रूप रङ्ग नष्ट हो हो जाता है। शास्त्रोंके जानने वाले को प्रतिपक्षियोंका भय रहता है, क्योंकि प्रतिपक्षी सदा

उसे नीचा दिखाना और उसका अपमान करना चाहते हैं। पुण्य या सद्गुणोंमें दुष्टोंका भय रहता है; दुष्ट लोग अच्छे-से-अच्छे कामोंमें दोष निकाल कर, उनका उलटा अर्थ लगाने लगते हैं; वे निन्दा या अपवाद करके गुणीके गुणोंका मूल्य घटानेकी भरपूर चेष्टा किया करते हैं। शरीर को मृत्युका भय रहता है; क्योंकि काया का नाश अवश्यम्भावी है। जो शरीरमें आया है, जिसने यह शरीर रूपी वस्त्र पहना है, उसे अपना शरीर छोड़नाही होगा—यह चोला बदलना और नया पहनना होगा।

इस तरह विचार करनेसे यही सिद्ध होता है, कि मनुष्यको सांसारिक सभी पदार्थों में भय ही भय है। फिर भय किसमें नहीं है? केवल वैराग्य या त्याग अथवा संन्यास ही ऐसा है, जिसमें किसी भी बात का भय नहीं है।

संसार से भीत होकर ही महाकवि ग़ालिब ने भी ऐसी ही बात कही है:—

रहिए अब ऐसी जगह चलकर, जहाँ कोई न हो।
हमसखुन कोई न हो, और हमज़बाँ कोई न हो॥१॥
बे दरो दीवार सा, इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो, और पासबाँ कोई न हो॥२॥
पड़िए गर बीमार, तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइए, तो नोहाख़ाँ कोई न हो॥३॥

संसार में ज़रा भी सुख नहीं है, सर्वत्र भय-ही-भय है। एक को एक खाने को दौड़ता है। जिसे देखो वही जला मरता है। यहाँ ईर्षा-द्वेषका बाज़ार ज़ोरों से गर्म है, इसवास्ते ऐसी जगह में चल कर रहना चाहिये, जहाँ कोई न हो; हमारी बात कोई न समझे और हम किसी को न समझें। मकान भी ऐसा हो, जिसमें दरवाज़े और दीवारें न हों, अर्थात् साफ जङ्गल हो। न हमारा कोई भायी हो, न पड़ोसी ; अगर बीमार हो जायँ, तो कोई ख़बर लेनेवाला और तीमारदारी यानी शुश्रूषा करने-वाला न हो। अगर सौभाग्य से मर जायँ, तो कोई शोक करनेवाला भी न हो।

यों तो संसार दुःखोंका भण्डार है, पर दुर्जनोंका दुःख हमारी समझमें सबसे ज़बर्दस्त है। महात्मा सुन्दर दासने भी यही कहा है :—

सर्प डसे सु नहीं कछु तालक।
बीछु लगे सु भलो करि मानो॥
सिंह हु खाय तु नाहिं कछु डर।
जो गज मारत तौ नहिं हानी॥
आगि जरौ जलबूड़ि मरौ गिरि।
जाइ गिरौ कछु भै मत आनौ॥
सुन्दर और भले सबही यह।
दुर्जन संग भलो जिन जानौ॥

सारांश यह कि, संसार से दुःखित और उदासीन मनुष्य के लिए वनमें जाकर रहने में ही शान्ति है। इन पंक्तियोंके लेखक का भी जी अनेक वार ऐसा ही चाहने लगता है। इस संसारसे दिल लगाना अच्छा नहीं मालूम होता, पर वकील उस्ताद जौक कुछ मजबूरी ऐसी आपड़ती है, कि सरता नहीं। आपने फरमाया है,—

बेहतर तो है यही, कि न दुनिया से दिल लगे।
पर क्या करें, जो काम न बे दिल्लगी चले॥

संसार से दिल लगाना अच्छा नहीं, पर क्या करें बिना दिल लगाये चलता भी तो नहीं।

छप्पय।

बहुत भोग को संग, तहाँ इन रोगन को डर।
धनहुँ को डर भूप, अग्नि अरु त्योंही तस्कर।
सेवा में भय स्वामि, समर में शत्रुनको भय।
कुलहु में भय नारि, देह को काल करत छय।
अभिमान डरत अपमान सों, गुन डरपत सुन खल शबद।
सब गिरत परत भय सों, फेर अभय एक वैराग्यपद॥३५॥

35. In the enjoyment of pleasures there is always the fear of disease. Membership

in a high family is accompanied by the fear of the latter's downfall. Wealth is ever haunted by the fear of kings. Silence is associated with the fear of neglect and dishonour. In strength there is the fear of enemies. A handsome appearance is always in fear of being disfigured in old age. Learning and science have the fear of antagonistic discussions. Good qualities suffer from the fear of evil-minded persons who will do their best to lower the value of a man possessed of them by slander etc. The body is beset with the fear of death. Thus everything in this world pertaining to man is associated with fear. Renunciation alone is free from such associations.

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां
कृते किन्नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ॥
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःशंकमनसां
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥ ३६ ॥

कमलपत्र पर जलकी बूँदोंके समान चञ्चल प्राणोंके लिए, हमने बुरे और भलेका विचार न करके, क्या-क्या काम नहीं किये ? हमने धन-मदसे मतवाले लोगोंके

सामने निर्लज्ज होकर अपने गुणोंके कीर्त्तन करनेका पाप तक किया ॥ ३६ ॥

संसारमें अपने गुणोंका आप बखान करना बड़ा भारी पाप समझा जाता है। आत्मश्लाघा या आत्मप्रशंसा वास्तव में ही बुरी है। कोई भी बुद्धिमान ऐसा नहीं करता ; परन्तु ज़रूरत इस पापको भी करा लेती है। जब किसी तरह कोई काम नहीं होता, कोई और तारीफ करनेवाला नहीं मिलता,तब मनुष्य इस निन्द्य-कर्म को भी करता है। कहनेवाला कहता है, कि यह प्राण उसी तरह चंचल हैं, जिस तरह कमलके पत्ते पर पानी की बूँद। यह जीवन बादलकी छाया, बिजली की चमक अथवा पानीके बबूले की तरह है। इस जीवन के लिए, जो ऐसा क्षणभंगुर है, जिसकी स्थिरता कुछ भी नहीं है, मैंने कोई उपाय—कोई उद्यम उठा न रक्खा। और तो और ; इस क्षुद्र जीवनके लिये अपनी तारीफ आप करनेका महापातक भी मैंने किया ; और वह भी ऐसे लोगोंके सामने, जो धनके मदसे मतवाले हो रहे थे, जो किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखते थे। यह सब अकर्म करने पर भी मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ।

जीवन की चंचलता पर महात्मा कबीर कहते हैं:—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिपजायगा, ज्यों तारा परभात॥

कबिरा पानी हौज़का, देखत गया बिलाय ।
ऐसे जिवरा जायगा, दिन दस ढीलौं लाय ॥
तू मति जानें बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान सों बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥

कुण्डलिया ।

जैसे पंकज पत्र पर, जल चंचल ढुरि जात ।
त्योंही चंचल प्राणहू, तजि जैहैं निज गात ।
ताजि जैहैं निज गात, बात यह नीके जानत ।
तोहू छाँड़ि विवेक, नृपन की सेवा ठानत ।
निज गुण करत बखान, निलजता उघरी ऐसें ।
भूल गयो शतज्ञान, मूढ अज्ञानी जैसे ॥३६॥

36. For the sake of prolonging our life-breath which is as restless as the drops of water lying on a lotus-leaf what measures were left undone by us even discarding all discrimination between right and wrong? So much so that we had to indulge in the sin of shameless self-praise in the presence of wealthy men whose mind is filled with extreme vanity and unscrupulousness.

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च त-
त्पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः॥
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मैनमः॥३७॥

ए भाई! कैसे कष्टकी बात है! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी सेना कैसी थी, उसके राजपुत्रों का समूह कैसा था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसी-कैसी चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, कैसे अच्छे-अच्छे चारण भाट और कहानी कहनेवाले थे। वे सब जिस काल के वश हो गये, उसी कालको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३८॥

कोई सज्जन किसी प्रतापी राजाकी राजनगरी को उजड़ देख कर शोक करता और कहता है—ओह, यहाँ का राजा कैसा ज़बर्दस्त था, उसके पास अनगिन्ती सेना थी, उसके पास अच्छे-अच्छे शूर सामन्त थे, उसके बड़े-बड़े शूरवीर राजपुत्र थे, उसके यहाँ चन्द्रमा को भी लजानेवाली स्त्रियाँ थीं, उसकी राजसभा इन्द्रकी सभा को भी मात करती थी, उसकी सभामें एक से एक बुद्धिमान मन्त्री, चारण भाट, विदूषक प्रभृति थे। एक दिन ये सब था, पर आज न वह राजा है, न राजनगरी है, न राजसभा है, न वह चतुरङ्गिणी सेना

है, न वे शूर सामन्त हैं, न वे विधुवदनी मोहिनी स्त्रियां हैं! वे सब कहाँ गये? उन सबको काल खागया। आज उनका नाम-निशान भी संसारमें नहीं है! ओह! जो काल ऐसा बली है, जिसने सबको स्वप्नवत कर दिया है, मैं उस बली कालको ही नमस्कार करता हूँ।

महात्मा कबीरदास कहते हैं:—

सातों शब्दज बाजते, घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली परे, बैठन लागे काग॥
परदा रहती पदमिनी, करती कुलकी कान।
छड़ी जु पहुँची कालकी, डेरा हुआ मैदान॥

निश्चय ही संसार अनित्य और नाशमान है, इस जगत् की कोई भी चीज़ सदा नहीं रहेगी। एक दिन अपनी-अपनी बारी आने से सभी का नाश होगा। इसी विषय में महाकवि दाग़ कहते हैं और सच कहते हैं—

है ज़वाल आमदा अजज़ा, आफ़रीनशके तमाम।
महर गर्दू है, चिरागे रहगुज़ारे बाद याँ॥

संसारके सभी पदार्थ अनित्य हैं, सभी नाशमान् हैं। जिसे सूर्य्य कहते हैं वह भी एक ऐसा चिराग़—दीपक है, जो हवाके सामने रक्खा हुआ है और "अब बुझा अब

बुझा" जो रहा है. तब औरोंको तो बात ही क्या ? इस संसार की यही दशा है।

दोहा।

नृपति सैन सम्मति सचिव, सुत कलत्र परिवार।
करत सबनको स्वप्नसम, नमो काल करतार ॥३७॥

37. How painful, alas! O brother, is the fate of that great king who was surrounded on all sides by his dependent chieftains who had such a brilliant court, such handsome women, such a host of haughty princes and such bards and story-tellers! Let us bow before the all-powerful Time through whose influence all those have now passed into oblivion.

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः॥
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना-
द्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥ ३८॥

जिनके साथ हमने जन्म लिया था, उन्हें इस दुनियासे गये बहुत दिन होगये; जिनके साथ हम बड़े हुए थे वे भी इस दुनियाको छोड़ गये। अब हमारी

दशा भी रेतीले नदी-किनारे के वृक्षोंकी सी हो रही है, जो दिन-दिन जड़ छोड़ते हुए गिराऊ होते चले जाते हैं ॥ ३८ ॥

जिन लोगोंके साथ हम जन्मे थे अथवा जो लोग हमारे समवयस्क थे, वे चल बसे ; जिन लोगोंके साथ हम पले, जिनके साथ हम खेले-कूदे, जिनके साथ हमने कारोबार किया, वे सब भी काल के गालमें समा गये। अब हमारा नम्बर भी आया ही समझिये—अब हम भी चलने ही वाले हैं। दिन-दिन हमारा शरीर चीण हुआ जाता है। हमारी दशा अब बालूमें लगे हुए नदी-तटके वृक्षों की सी है, जिनके गिरनेकी संभावना हर घड़ी रहती है। हमारी ऐसी हालत है, फिर भी आश्चर्य्य है, कि हमारा माया-मोह नहीं छूटता! अब भी हमारा मन नहीं समझता और वह संसारी जञ्जालोंसे अलग होना नहीं चाहता।

महात्मा कबीर भी यही कहते हैं। उनकी भी सुन लीजिये :—

> बारी बारी आपनी. चले पियारे मिंत।
> तेरी बारी जीवरा, नियरे आवे निंत॥
> माली आवत देखिके, कलियाँ करें पुकार।
> फूली फूली चुनि लई, कल्ह हमारी बार॥

साथी हमरे चलि गये, हम भी चालन हार।
कागद में बाकी रहो, ताते लागी बार॥

बारी-बारी से सभी प्यारे और मित्र चल बसे। अरे जीव! अब तेरा नम्बर भी आता है। माली को आते देख कर कलियों ने कहा—फूली-फूली तो आज चुन ली गईं, कल हमारी भी बारी है।

संसार का यही हाल है, रोज़ ही यह तमाशा देखते हैं, पर फिर भी हमें होश नहीं होता!

छप्पय।

जो जन्मे हम संग, उतो सब स्वर्ग सिधारे।
जो खेले हम संग, काल तिनहुँ कहँ मारे।
हमहूँ जर जर देह, निकट ही दीसत मारिबो,
जैसे सरितातीर वृक्षको, तुच्छ उखारिबो।
अजहूँ नहिं छाँड़त मोह मन, उमग उमंग उरझो रहत।
ऐसे अचेत के संग सों, न्याय जगत को दुख सहत॥३८॥

38 Those with whom we were born have long ere this passed away from this world. Those with whom we grew up have also shared the similar fate. Our condition now is like that of the trees growing on a sandy

river-bank which are gradually crumbling away from day to day.

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
तत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः ॥
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्द्वाविवाक्षौ
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणसारैः ॥२६॥

जिस घरमें पहले अनेक लोग थे, उसमें अब एक ही रह गया है। जिस घर में एक था, उसमें अनेक हो गये, पर अन्तमें एक भी न रहा। इससे मालूम होता है, कि काल देवता, अपनी पत्नी काली के साथ, संसार-रूपी चौपड़ में, दिन-रात रूपी पासों को लुढ़का-लुढ़का कर, इस जगत् के प्राणियों को गोटी बना-बना कर, खेल रहा है ॥ ३८ ॥

जिस घरमें पहले पुत्र, पौत्र, पुत्र-वधू, पौत्र-वधू, पुत्री, दौहित्र,दौहित्री प्रभृति अनेक लोग थे, आज वह सूनासा हो गया है, उसमें आज एक ही आदमी नजर आता है। जिस घरमें पहले एक आदमी था, उसका कुटुम्ब इतना बढ़ा कि सैंकड़ों हो गये, पर आज देखते हैं, उसमें एक भी नहीं है। घरका ताला लगा है, भीतर लम्बी-लम्बी घास उग आई है, दीवारें गिर रही हैं, छतें गिर पड़ी हैं, ईंटें दांत दिखा रही हैं। अब उस घरमें चमगीदड़ उल्लू, साँप और बिच्छू प्रभृति रहते हैं।

महात्मा कबीर कहते हैं—

ऊँचा महल चिनाइया, सुवरन कली दुलाय ।
ते मन्दिर खाली परे, रहे मसाना जाय ॥
मलमल खासा पहरते, खाते नागर पान ।
टेढ़े होकर चालते, करते बहुत गुमान ।
महलन मांही पौढ़ते, परिमल अंग लगाय ।
ते सुपने दीसे नहीं, देखत गये विलाय ॥

छप्पय ।

बहुत रहत जिहिं धाम, तहाँ एकहि को राखत ।
एक रहत जिहिं ठौर, तहाँ बहुतहि अभिलाषत ।
फेर एकहू नाहिं, करी तहँ राज दुराजी ।
काली के संग काल, रची चौपड़ की बाजी ।
दिनरात उभय पासा लिये, इह विधिसों क्रीड़ा करत ।
सब प्राणी सोवत सार ज्यों, मिलत चलत बिछुरत मरत ॥३९

39. In homes where there were many members before, there is only a single one left now i. e., out of innumerable members only one is survived. In families, which consisted of a single person at first but had multiplied afterwards, not a soul has been

left in the end. Thus the changeable god of Time is playing at dice with his wife Kali, the goddess of destruction, using Day and Night as a pair of dice for casting and laying poor mortals at stake on each turn.

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदर्कान्दारानुत परिचरामः सविनयम् ॥
पिबामः शास्त्रौघानुतविविधकाव्यामृतरसा-
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥४०॥

हमारी समझ में नहीं आता, कि हम इस अल्प जीवन—इस छोटीसी ज़िन्दगी में क्या-क्या करें अर्थात् हम गंगा-तट पर बस कर तप करें, अथवा गुणवती स्त्रियों की प्रेम सहित यथायोग्य सेवा करें, अथवा हम वेदान्त शास्त्र का अमृत पियें या काव्यरस पान करें ॥४०॥

कहनेवाला कहता है और टीकाकी कहता है—यह जीवन क्षणभर का है। इस चन्दरोज़ा ज़िन्दगी में हम क्या-क्या करें! काम तो अनेक हैं, पर समय थोड़ा है। गंगातट पर जाकर शिव-शिव की रटना लगाना भी अच्छा है; गुणवती सुन्दरियों के साथ मीठी-मीठी बातें बनाना और उनके सङ्ग रहना, उनके साथ रमण करना भी भला है। वेदान्त शास्त्रके मर्मको

उलझाना और उसका अमृत-रस पीना या काव्य-रस पीना भी अच्छा है। अच्छे सब हैं, सभी करने योग्य हैं; पर हमारी समझ में नहीं आता, कि एक पलभर की ज़िन्दगी में हम क्या-क्या करें? मतलब यह है, कि मनुष्य-जीवन बहुत ही थोड़ा है। इसलिये मनुष्य को जब तक दम रहे, सब तज कर परमात्मा का भजन करना चाहिये। कबीरदास कहते हैं—

यह तन काँचा कुम्भ है, माँहि किया रहवास।
"कबिरा" नैन निहारिया, नहीं पलक की आस॥

"कबिरा" जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल।
चेत सके तो चेतिये, मीच परी है ख्याल॥

"कबिरा" सुपने रैनके, उघरि आये नैन।
जीव परा बहु लूट में, जागूँ तो लेन न देन॥

आजकाल कि पाँच दिन, जंगल होयगा वास।
ऊपर-ऊपर हल फिरै, ढोर चरैंगे घास॥

तुलसीदासजी कहते हैं—

"तुलसी" जगमें आइके, कर लीजे दो काम।
देवे को टुकड़ा भलो, लेवेको हरि-नाम॥

"तुलसी" राम-सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अङ्क नौ, नौ के लिखत पहार॥

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, राम चरन छत्तीन।
"तुलसी" देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन ॥

दोहा।

तप तीरथ तरुणी रमण, विद्या वहुत प्रसंग।
कहा कहा मन रुचि करै, पायौ तन क्षण भंग ॥४०॥

40. Should we sojourn by the banks of the heavenly river Ganges practising penances, or should we enjoy the company of women possessing the high qualities of beauty etc. always addressing them in a befitting manner, or should we drink in the ambrossial essence of the religious books or literary treatises? We are quite at a loss to know which course we should have recourse to in so short a life!

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
संप्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः शृङ्गकंडूविनोदम् ॥४१॥

अहा! वे सुखके दिन कब आवेंगे, जब हम गंगा किनारे, हिमालय की शिलाओं पर, पद्मासन लगा कर,

वे सुख के दिन कब आवेंगे, जब हम (इन योगिराजकी तरह) गंगातट पर पद्मासन लगा, योगनिद्रामें मग्न होंगे और बूढ़े बूढ़े हिरन हमारे शरीरकी रगड़से अपनी खुजली मिटाते होंगे ?   [पृ० ८८ श्लोक ४१

विधान अनुसार आंख मूँद कर, ब्रह्मका ध्यान करते हुए, योगनिद्रा में मग्न होंगे और बूढ़े-बूढ़े हिरन निर्भय हो, हमारे शरीरको रगड़ से, अपने शरीरको खुजली मिटाते होंगे ? ॥४१॥

संसारी माया-जाल में सुख नहीं है। इसमें जो सुखी दीखते हैं, वे भी वास्तव में दुखी हैं। उनका सुख दिखावटी सुख है, सच्चा सुख नहीं है। हम उन्हें गाड़ी और मोटरों में चढ़ते देख, उन्हें बढ़िया-बढ़िया महलों में आनन्द करते देख, उनके यहाँ द्रव्यकी बाहुल्यता देख, सुखी समझते हैं; पर वास्तवमें वे सुखी नहीं हैं। असल बात यह है, संसारमें सुख है ही नहीं। सुख केवल "वैराग्य" में है। इसीलिये कहनेवाला कहता है, वे दिन कब आवेंगे, जब हम गङ्गा किनारे, हिमालय की शिला पर बैठ, पद्मासन लगा कर, ब्रह्मके ध्यानमें लीन होंगे ? उस ध्यान में जब हमारी सुध-बुध जाती रहेगी, उस समय बूढ़े हिरन हमें जीता-जागता मनुष्य न समझ, कोई निर्जीव पदार्थ समझ, निःशङ्क होकर, हमारे शरीर से अपना शरीर रगड़-रगड़ कर, अपने शरीर की खुजली मिटायेंगे। जिन पुरुषों को यह सुख प्राप्त है, वही सच्चे सुखिया हैं—उन्हींका जीवन धन्य है।

प्रेमिक के प्रेम में तन्मय हो जाने में ही मज़ा है। जब पूरा-पूरा ध्यान लग जाता है, तब शरीर पर पक्षी

बैठें या जानवर, खुजली मिटावें या चाहे जो करें, कोई ख़बर नहीं रहती। ऐसे ध्यानियोंको ही सिद्धि मिलती है। महाकवि दाग़ कहते हैं :—

कमाल इश्क़ है, ऐ दाग़ महव हो जाना।
मुझे ख़बर नहीं, नफ़ा क्या ज़रर कैसा॥

प्रेम में जो लोग तन्मय हो जाते हैं, उन्हींका प्रेम प्रेम है। बिना तन्मयता के प्रेम थोथा है। मैं तन्मय हूँ, इसलिये मुझे घाटे लाभ की फ़िक्र तो क्या, ख़बर ही नहीं।

कबीर कहते हैं—

प्रेम-प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय॥
लौ लागी जब जानिये, छूटि न कबहुँ जाय।
जीवन लौ लागी रहे, मुवा माहिं समाय॥

दोहा।

महाध्यान धर गंगतट, बैठूँगो तज संग।
कबधौं वह दिन होयगो, हिरण खुजावत अंग॥४१॥

41. When are those happy days to come when I shall be sitting in the Padma posture on a rock of the Himalaya mountain, absor-

bed in meditation of Brahma in strict compliance with the principles of Yoga, when the oldest deer of the forest will make themselves happy by scratching my body with the tips of their horns fearlessly.

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु द्युसरितः ।
भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्यार्तवचसा
कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पप्लुतदृशा ॥ ४२ ॥

वह समय कब आवेगा, जब हम पवित्र गङ्गाके ऐसे स्थान पर सुख से बैठे होंगे, जो चन्द्रमा की चांदनी से चमक रहा होगा और रातके समय जब सब तरह का शोरगुल बन्द होगा, आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से, संसार के विषय-दुःखों से थक कर, हम सर्वशक्तिमान् शिव को रटना लगा रहे होंगे ? ॥ ४२ ॥

धन्य हैं, वे लोग जिन्हें संसारी झूठे विषय-सुखोंसे नफ़रत हो गई है, जो यहां के जञ्जालों से थक गये हैं, जिन्होंने मोहजाल तोड़ कर गङ्गा के पवित्र किनारे पर वास कर लिया है और निस्तब्ध चांदनी रातमें गद्गद् होकर शिव-शिव रटते हैं। और लोग जो संसार की मोहपाश में फँसे हुए हैं, अपना जीवन वृथा खोते हैं।

दोहा ।

ज्योत्स्ना सों सित थल तहाँ, मुदित आंसुयुत नैन
कब रटिहौं तट गंगके, शिव शिव आरत वैन ॥४२॥

42. When is the time to come when, sitting peacefully on a lonely spot by the side of the holy Ganges where the surface of the ground has been made luminous by the spreading, shining moon-light and the nights are free from all sorts of disquieting sounds, we shall shed tears of joy from eyes filled with them spontaneously, our minds tired of the pleasures of life and our speech deep in humble prayer to the Almighty Shiva.

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरि-
द्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यं व्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ४३ ॥

महादेव ही हमारा एक देव हो, जाह्नवी ही हमारी नदी हो, एक गुफा ही हमारा घर हो, दिशाही हमारे वस्त्र हों, समय ही हमारा मित्र हो, किसी के सामने

दीन न होना ही हमारा मित्र हो, अधिक क्या कहें, वट-वृक्ष ही हमारी अर्द्धांगिनी हो ॥ ४३ ॥

जो हज़ारों लाखों देवताओं को छोड़कर एक परमात्मा को ही अपना देव समझता है, रात-दिन उसीके ध्यान में मग्न रहता है, जो गङ्गा तट पर बसता है, गंगा में स्नान करता है, गंगाजल ही पीता है, जो कपड़ों की भी ज़रूरत नहीं रखता, दिशाओंको ही अपने वस्त्र समझता है, कालको ही अपना मित्र मानता है, किसी के सामने दीनता नहीं करता, किसी से कुछ नहीं माँगता, वटवृक्ष के आश्रय में रह कर भगवान् का भजन करता है और उसको ही अपने दुःख-सुख की संगिनी प्राणवल्लभा समझता है, वही पुरुष धन्य है! उसका ही जगत् में आना सफल है। परमात्मा की दया या पूर्वजन्म के पुण्योंसे ही ऐसा अवसर मिलता है।

दोहा।

देव ईश सुरसरि सरित, दिशा वसन गिरि गेह।
सुहृत्काल वट कामिनी, व्रत अदैन्य सुख एह ॥४३॥

43. Let the Great God be the only god for us, the heavenly Ganges the only river, a cave the only house, the directions or the open space the only clothing, time the only

friend and the vow of non-supplication the only vow. What more should we say than that a banyan tree in the forest may be our only better half ?

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्राद्युत्तुंगादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥
अधो गंगा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ ४४ ॥

देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरीं, उनके सिर से हिमालय पर्वत पर, हिमालय पर्वत से पृथ्वी पर गिरीं, पृथ्वी से समुद्र में गिरीं। इससे मालूम होता है, कि विवेक-हीनों का पद-पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है ॥ ४४ ॥

जो विचारपूर्वक काम नहीं करते, जो अक्लसे काम नहीं लेते, उनको तरह-तरह से नीचा देखना पड़ता है। कविने यहाँ गंगाका दृष्टान्त दिया है और खूब दिया है।

शिक्षा—जो विवेक-हीन है, जो अहङ्कारी हैं, वे सदा नीचा देखते हैं, बार बार नीचे गिरते हैं। अतः मनुष्यको भूल कर भी घमण्ड न करना चाहिये।

देखिये, गंगा स्वर्ग से शिवजी के मस्तक पर गिरीं, उनके सिरसे हिमालय पर्वत पर, हिमालय से पृथिवी पर, पृथिवी से समुद्र में गिरीं। इससे मालूम होता है, कि विवेकभ्रष्टोंका पद-पद पर सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

[पृष्ठ ८४ श्लोक ४४

शुद्धचित्त योगीराज ही इस समुद्र आशानदी के पार जा सकते हैं। [पृ० ८५
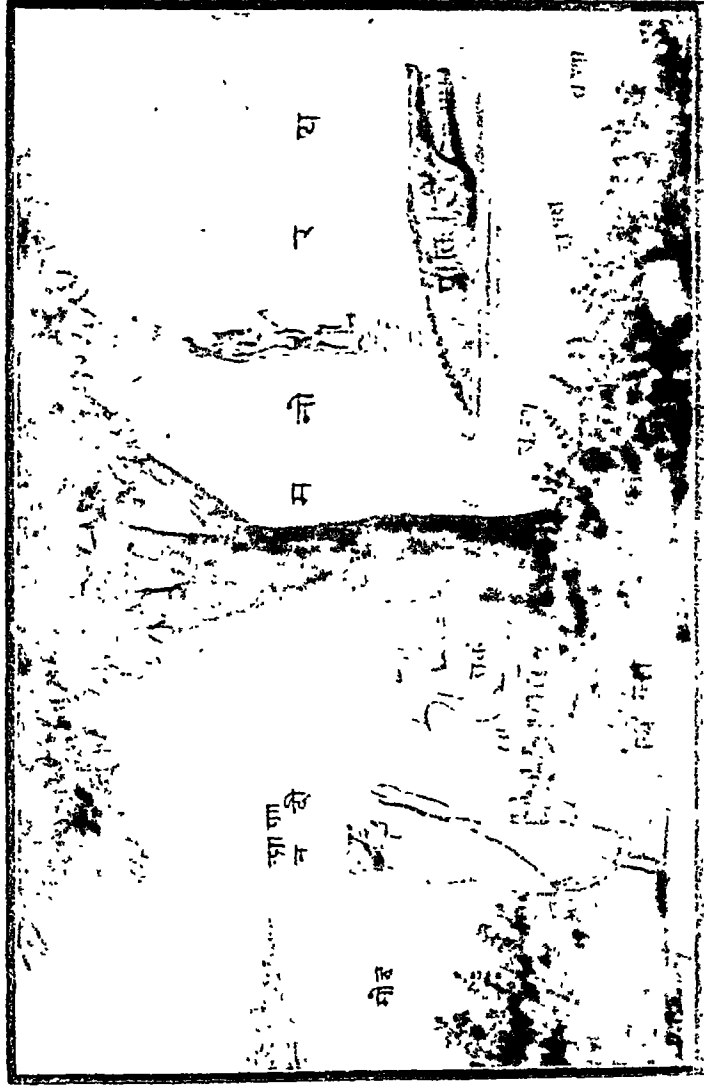
शेखसादी ने कहा है—

हर्के बेहूदा गर्दन अफ़राज़द।
ख़ेश्तनरा बगर्दन अन्दाज़द॥

जो कोई अपनी गर्दन ऊँची करता है, वह मुँहके बल गिरता है।

44. Look how the great Ganges has fallen lower and lower from her abode of stupendous elevation! From the Swarga down on to the head of the God Shiva, from thence to the summit of the mountain, from the mountain to the plain earth and from thence down to the sea. Similar is the fate of men devoid of discriminating reason who undergo a downfall in hundreds of ways,

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी॥
मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसोनंदन्ति योगीश्वराः॥४५॥

आशा एक नदी हैं, उसमें इच्छा रूपी जल है। तृष्णा उस नदी की तरङ्गें हैं, प्रीति उसके मगर हैं, तर्क-वितर्क या दलीलें उसके पक्षी हैं, उसमें मोहरूपी भँवर हैं

चिन्ता ही उसके किनारे हैं, वह धैर्य्यरूपी वृक्ष को गिरानेवाली है ; इस कारण उसके पार होना बड़ा कठिन है। जो शुद्धचित्त योगीश्वर उसके पार चले जाते हैं, वे बड़ा आनन्द उपभोग करते हैं ॥ ४५ ॥

नदी का नाम क्या है ? आशा। उसमें जल काहे का है ? इच्छा का जल है। उसमें मगर कैसे हैं ? उसमें प्रीतिरूपी मगर हैं। उसमें जलचर पक्षी कैसे हैं ? नाना प्रकारके तर्क-वितर्क उसके पक्षी हैं। वह किनारे के किन दरख़्तों को गिराती है ? धैर्यरूपी दरख़्तोंको गिराती है। उसमें भँवर कैसे हैं ? उसमें मोहरूपी भँवर हैं। उसके किनारे काहे के हैं ? चिन्ता के। उसको कौन पार कर सकते हैं ? उसको वही पार कर सकते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जिनके चित्तसे ये सब बलायें हट गई हैं, जिनका चित्त केवल ब्रह्ममें लीन है। सारांश—यदि आनन्द चाहो, तो आशा, इच्छा, प्रीति, तर्क-वितर्क, मोह, चिन्ता प्रभृति को एकदम छोड़ कर शुद्धचित्त हो जाओ और अपने आत्मा या ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय हो जाओ।

छप्पय।

नदीरूप यह आश, मनोरथ पूर रह्यौ जल।
तृष्णा तरल तरंग, रागहै ग्राह महाबल।

नाना तर्क विहंग, संग धीरज तरु तोरत।
भ्रमर भयानक मोह, सबद्को गहिं गहि बोरत।
नित बहत रहत चित भूमिमें, चिन्तातट अतिही विकट।
काढि गये पार योगी पुरुष,उन पायौ सुख तेहि निकट ॥४५॥

45 Hope is just like a river with water in the shape of desires, agitated by currents in the shape of avarice, with alligators in the shape of attachments, with watery birds in the shape of motley designs, with the power of destroying one's perseverance in place of uproting trees, difficult to cross owing to the presence of whirl-pools in the shape of worldly love, exceedingly deep and possessing banks in the shape of very great cares. Happy are the great Yogis, who pure in mind, have succeded in stepping over it.

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात ताढ्ङ्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ॥
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान-
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥ ४६ ॥

ओ भाई! मैं सारे संसार में घूमा, तीनों भुवनों में खोज की, पर ऐसा मनुष्य न मैंने देखा न सुना, जो

अपनी कामेच्छा पूर्ण करने के लिये हथिनीके पीछे दौड़ते हुए मदोन्मत्त हाथी के समान, मनको वश में रख सकता हो ॥ ४६ ॥

भाई! मैंने त्रिलोकी खोज डाली, पर मुझे एक भी आदमी ऐसा न दीखा, जो विषयरूपी हथिनी के पीछे लगे हुए मनरूपी गजको रोक सकता हो। इसका खुलासा यह है,—विषयों में फँसे हुए मनको काबू में रखना, अथवा उसे विषयों से हटाना असम्भव है।

मन बड़ा ज़बर्दस्त है। इसके पङ्ख नहीं, पर पक्षीकी तरह उड़नेवाला है; कभी यह आकाश में जाता है, कभी पाताल में जाता है। मन शरीर को जिधर घुमाता है, शरीर उधर ही घूमता है। मन ही मनुष्यको परमात्मा से अलग रखता है और मनही उससे मिला देता है। इसकी चञ्चलता अच्छी नहीं। इसकी चञ्चलता ही साधनामें बाधक है। महात्मा कबीर कहते हैं—

मन पंक्षी तब लगि उड़े, विषय-वासना माँहि।
ज्ञान बाज की झपट में, जब लगि आया नांहि॥
मन के बहुते रङ्ग हैं, छिन छिन बदले होय।
एक रंगे जो रहे, ऐसा बिरला कोय॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौरि।
सहजे हीरा ऊपजे, जो मन आवे ठौरि॥

मन के मते न चालिये, मनका मता अनेक।
जो मन पर असवार है, ते साधू कोई एक॥

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

दुनिया से मैं अगर, दिले मुज़तर को तोड़ दूँ।
सारे तिलिस्म, वहम मुक़द्दर को तोड़ दूँ॥

संसार में लगे हुए मनको यदि मैं तोड़ दूँ, तो धोखे और बुराई में डालनेवाले इस प्रपञ्चको ही तोड़ डालूँ। संसार-पाश में बँधे हुए मनको तोड़ना मुश्किल है।

उस्ताद ज़ौक़ एक जगह फिर कहते हैं—

बड़े मूज़ी को मारा, नफ़्से अम्मारे को गर मारा।
नहंगो अज़दहाओ, शेर नर मारा तो क्या मारा॥

अपने दिल को मार, अभिमान को मार, इसमें तेरी बड़ाई है। बड़े बड़े खूँख़्वार जानवरों के मारने में वीरता नहीं है। पर अभिमान-शून्य होना है बड़ा कठिन। जिस बासन में लहसन या प्याज़ रक्खे जाते हैं, उसमेंसे उनकी गन्ध बड़ी कठिनाई से जाती है; इसी तरह अभिमान भी बड़ी कठिनाई से जाता है।

इसके नाश का उपाय विवेक या ज्ञान है। जब ज्ञान का उदय हो जाता है, तब जिस तरह पका आम आपसे आप गिर पड़ता है, उसी तरह अभिमान भी आपसे

आप दूर हो जाता है। अभिमान के नाश होते ही चित्त शुद्ध हो जाता है। चित्त के शुद्ध होने से परमात्मा के दर्शन होने की राह साफ हो जाती है।

मनुष्यो, अभ्यास करो, अभ्यास से सब कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। जैसे भी हो, मनको वासना-हीन बनाओ। वासना-हीन निर्मल चित्तवाले व्यक्ति पर उपदेश जल्दी असर करता है और उस में ईश्वरानुराग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

दोहा।

ऐसौ मैं संसार में, सुन्यौ न देख्यौ धीर।
विषया हथिनी संग लग्यो, मनगज बाँधै बीर ॥४६॥

46. O brother, wandering all the world over and seeking throughout the three Regions we have neither seen nor heard af a man who has been successful in curbing the wild restlessness of his mind which is like a male-elephant turned mad through cupidity and pursuing his female for the gratification of his sensual desires.

ये वर्द्धंते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो
ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तवुद्धेः ॥

तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं
ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥४७॥

वे दिन जो धनके लिये धनवानों की खुशामद करने के दुःखसे बड़े मालूम होते थे और वे दिन जो विषयासक्ति में छोटे लगते थे, उन दोनों प्रकार के दिनोंको हम पर्वत की एकान्त गुहा में पत्थर की शिला पर बैठे हुए, आत्मध्यान में मग्न होकर, अन्तःकरण में हँसते हुए याद करेंगे।

जिन लोगोंको अनेक प्रकारके ऐशोइशरत और भोग-विलासके सामान मयस्सर हैं, जिनके यहाँ किसी भी संसारी भोग-विलास की सामग्री का अभाव नहीं है, जिनके सुन्दरी मृगनयनी कामिनी सेवा करने को हैं, जिनके दास-दासी हैं, जिनके बाग़ बग़ीचे हैं, जिनके गाड़ी-घोड़े और मोटर हैं, जिनके पीछे अनेक तरहके खुशामदी लगे रहते हैं, जिनके हाथमें द्रव्य है अथवा जिन पर राज-कृपा है—ऐसे लोगोंके दिन बड़ी जल्दी कटते हैं। उन्हें दिन-रात बीतते मालूमही नहीं होते, लम्बे-लम्बे दिन भी छोटे प्रतीत होते हैं; किन्तु जिन लोगों को सब तरहका अभाव है, जो हर बातके लिये तङ्ग हैं, जो अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये धनियों से धन माँगते हैं, उनकी खुशामद करते हैं, उनकी दुत्कार-फटकार सहते हैं,

अपमानित होते हैं, उनके लिये वे ही दिन बड़े भारी मालूम होते हैं—काटे भी नहीं कटते। किन्तु जो लोग विषयोंका सामान होते हुए भी विषय-सुख नहीं भोगते, और अभाव होने पर भी इच्छा नहीं रखते, इस लिए धनियोंके देहरे नहीं ढोकते, उनकी खुशामद नहीं करते, अपने आत्माराममें ही मस्त रहते हैं,—वे सुखी हैं, उन्हें दिन बड़े और छोटे नहीं लगते।

जिसने दोनों प्रकार के दिन देखे हैं, पर शेष में उसे ऐसे झगड़ोंसे विरक्ति हो गई है, वह कहता है,—मैं एकान्त गुफा में पवित्र शिला पर बैठा हुआ, आत्माका ध्यान करूँगा और उन दिनोंको याद करके उन पर घृणा से हँसूँगा।

कुण्डलिया।

छोटे दिन लागत तिन्हें, जिनके बहुविधि भोग।
बीत जात बिलसत हसत, करत सुरत संजोग।
करत सुरत संजोग, तनक से लागत तिनकों।
जे हैं सेवक दीन, निपट दीरघहैं बिनकों।
हम बैठे गिरिशृंग, अंग याही तें मोटे।
सदा एक रस घोष, लगत हैं बड़े न छोटे ॥४७॥

47. *We shall now, seated in self-contem-*

plation on a stone in some lonely cave of a mountain, remember with a smile the past days which appeared to us to have become intolerably long when we suffered from the hardship of appealing to rich men for help and which became quite short when our mind was lost in the enjoyment of worldly pleasures.

विद्यां नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता ॥
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेपि नालिंगिताः
कालोयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥ ४८ ॥

न तो हमने निष्कलङ्क विद्या पढ़ी, न धन कमाया, न हमने शान्त चित्त से माता-पिताकी सेवा ही की, और स्वप्नमें भी हमने दीर्घनयनी कामिनियों को गले से न लगाया। हमने इस जगत्में आकर कव्वेकी तरह पराये टुकड़ों की ओर ताक लगाने के सिवा क्या किया ? ॥ ४८ ॥

जिस मनुष्य ने औरों की खुशामद-बरामद या लल्लो-पत्तो करके अपना पेट भरा, टुकड़ों के लिये सदा पराये मुँहकी ओर देखता रहा, वही शख़्स शेषमें दुःखित होकर कहता है,—हाय! मैंने बे-ऐब इल्म भी न

पढ़ा, धन भी उपार्ज्जन न किया, मृगनयनी कामिनियों का आलिङ्गन भी न किया, माता-पिता की सेवा भी न की—मैंने वृथा-जन्म लिया और अपना जीवन वृथा गँवाया !

जो संसार में आकर न हरिभजन करते हैं, न विद्या अध्ययन करते हैं, न धनोपार्ज्जन करके सुख भोगते हैं, न संसार के दुःखियों का दुःखही दूर करते हैं, उनका इस दुनिया में आना वृथा है। किसी ने कहा है—

इधर के रहे न उधर के रहे।
खुदा ही मिला न विसाले सनम ॥

और भी किसी ने कहा है—

कहा किया हम आय के, कहा करेंगे जाय।
इतके भये न उतके, चाले मूल गँवाय ॥

मतलब यह है, विद्या पढ़ना, विद्या-बुद्धि से धन उपार्ज्जन करना, सुख भोगना, माँ-बापकी सेवा करना अच्छा; पर खाली पेट भरने के लिये, कव्वेकी तरह पराया मुँह ताकना अच्छा नहीं। मुँह ही ताकना है, तो उस परमात्माका ताको, जो अभावशून्य है, सबका दाता है। उससे ही आपकी इच्छा पूरी होगी। अगर आप उसीका भरोसा करेंगे, तो वह आपके सब अभाव दूर करेगा,

आपके दुःखोंमें दुखी और आपके सुखोंमें सुखी होगा। इसके बिना आपको भूख न मिटेगी।

रहीम कहते हैं और सच कहते हैं—

रामचरण पहिचान बिन, मिटो न मनको दौर।
जनम गँवाये बादिही, रटत पराये पौर॥

तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी पति दरबार में, कमी वस्तु कछु नाहिं।
कर्महीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माहिं॥
राम गरीबनिवाज हैं, राम देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं, घुरविनिया की बानि॥

छप्पय।

विद्या रहित कलंक, ताहि चितमें नहिं धारी।
धन उपजायो नाहिं, सदा संगी सुखकारी।
मात पिता की सेव सुश्रुषा, नेक न कीन्हीं।
मृगनयनी नवनारि, अंक भर कबहुँ न लीन्हीं।
योंही व्यतीत कीन्हों समय, ताकत डोल्यौ काक ज्यौं।
ले भज्यो टुक पर हाथ तें, चंचल चोर चलाक ज्यौं॥४८

48. *We did not acquire knowledge pure of all blemishes, nor did we hoard wealth. We did not even serve our parents with a*

patient mind, or embrace youthful women with large and restless eyes even in our dreams. What did we do in this world except passing our days like a crow expecting to be given a morsel by others ?

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामावधिगतीः ॥
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै-
स्त्रियामां तेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥ ४६ ॥

सर्व्वस्व त्याग कर (अथवा सर्व्वस्व नष्ट होजाने पर) करुणापूर्ण हृदय से, संसार और संसारके पदार्थों को सारहीन समझ कर, हम केवल शिव चरणों को अपना रक्षक समझते हुए, शरदकी चाँदनीमें, किसी पवित्र वन में बैठे हुए कब रातें बितायेंगे ? ॥ ४८ ॥

वह दिन कब आवेंगे, जब हम सर्वस्व त्याग कर, संसार को असार समझ कर, संसारके सुखों को अनित्य समझ कर, संसार के भोग-विलासों को दुःखमूल समझ कर, विषयों को विष समझ कर, किसी पवित्र वन में बैठे हुए शरद ऋतु की चाँदनी रातों को शिव-शिव की रटना लगाते हुए व्यतीत करेंगे ? अर्थात् हमारे ये दिन जो संसारी जञ्जालोंमें बीते जा रहे हैं, वृथा

नष्ट हो रहे हैं। जब हम सबको त्याग कर भगवान् का भजन करेंगे, तभी हमारे दिन ठीक रूपसे कटेंगे। हम उन्हीं दिनों को सार्थक हुए समझेंगे। संसारी सुखों से तो हम अघा गये।

तुलसीदासजी कहते हैं—

दुखदायक जानि भले, सुखदायक भजि राम।
अब हमको संसारको, सब विधि पूरण काम॥

हे मन! अब परमात्मामें मन लगा, संसारी सुखों में अब हमारी इच्छा नहीं, इनकी पोल हमने देखली।

49. Now having renounced everything with our hearts full of deep emotions and looking back on the downfall brought about by evil actions done in the world, we will end our life passing our nights in a sacred forest where the rays of the winter moon are spreading, our hearts taking shelter only in the feet of the Great Shiva.

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषावशेषः॥
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः॥५०॥

हम वृक्षों की छाल पहन कर सन्तुष्ट हैं, आप शाल्लों से सन्तुष्ट हो। हमारा तुम्हारा दोनोंका सन्तोष समान है, कोई भेद नहीं। वही दरिद्र है, जिसके दिलमें तृष्णा है। सन्तोषी के लिये धनी और निर्धन दोनों बरा-बर हैं ॥५०॥

जिसे सन्तोष है,वह सदा सुखी है। उसे कोई सुख नहीं, जिसकी इच्छायें बड़ी-बड़ी हैं। जिसे सन्तोष नहीं है, वह सदा दुःखी है। सन्तोष बड़ी भारी दौलत से भी अच्छा है। जो सुखी होना चाहें, वह तृष्णाको त्यागें और परमात्मा जो दे उसीमें सन्तोष करें। सन्तोषीके लिये कोई व्याधि नहीं है। सन्तोषी का चित्त, मन और काया सदा सुखी रहते हैं। सन्तोषी किसी की खुशामद नहीं करता।

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

जो कुंजे क़नाअत में हैं, तक़दीर पर शाकिर।
है ज़ौक़ बराबर, उन्हें कम और ज़ियादा॥

जो सन्तोषी हैं, तक़दीर पर भरोसा रखते हैं, उन्हें कम और ज़ियादा सभी बराबर हैं। उन्हें जो मिल जाय, उसी पर सब्र है।

शेख़ सादी ने गुलिस्तां में लिखा है—

ऐ कनाअत तवन्गरम गरदाँ ।
के वराये तो हेच नेमत नेस्त ॥

हे सन्तोष! मुझे धनी बना दे—क्योंकि संसारकी कोई दौलत तुझसे बढ़ कर नहीं है।

मनुष्य को चाहिये, कि सूखी रोटी और चिथड़ों से बनी गुदड़ी में सुखी रहे। मनुष्यों के ऐहसानों का भार उठानेसे अपने दुःखों का भार हलका समझे। जो तंग-नज़र हैं, जो लोभी हैं, उनको सन्तोष से सुख मिलता है, अथवा मर जाने से।

सन्तोष की तारीफ़में महात्मा कबीर की भी सुनिये—

गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खानि।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

तुलसीदासजी की भी सुनिये :—

जहाँ तोष तहाँ राम है, राम तोष नहीं भेद।
"तुलसी" देखो गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद॥

छप्पय।

तुम धनसों सन्तुष्ट, हम हैं वृक्षवकल तें।
दोऊ भये समान, नैर सुख अंग सकल तें।
जान्यौ जात दरिद्र, बहुत तृष्णा है जिनके
जिनके तृष्णा नाहिं, बहुत सम्पत है तिनके।

तुमही विचार देखौ दृगन, को निर्धन धनवन्त को।
जुत पाप कौन निष्पाप को, को असन्त अरु सन्त को ५० ॥

50. We are contented here only with the possession of the bark of trees, whilst thou art content with the possession of wealth. Contentment being the same the difference between us is equalised. He is always poor whose desires are predominant in his mind while to a contented man the rich and the poor are all alike.

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश-
न्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ ५१ ॥

स्वाधीनतापूर्वक जीवन अतिवाहित करना, बिना माँगे खाना, विपद् में साहस करनेवाले मित्रोंकी संगति करना, मनको वशमें करनेकी तरकीबें बतानेवाले शास्त्रोंका पढ़ना-सुनना, चञ्चल चित्त को स्थिर करना—हम नहीं जानते यह किस पूर्व तपस्याके फलसे प्राप्त होते हैं ?

पराधीन मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, उसे

पैंड-पैंड पर अपमानित लाञ्छित और दुखित होना पड़ता है। जो स्वाधीन हैं, किसीके अधीन नहीं है, वे ही सच्चे सुखी हैं। जिनको अपने पेटके लिये किसी के सामने गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता, किसी के सामने दीन वचन कहने नहीं पड़ते, जिनके दुःसमय में सहायता देनेवाले, बिना कहे कष्ट निवारण करनेवाले मित्र हैं; जो मनको शान्त करनेवाले, उसकी चञ्चलता दूर करने वाले शास्त्रों को पढ़ते हैं—वे भाग्यवान् हैं। उन्होंने ये उत्तम फल पूर्वजन्म के किसी कठोर तपके फल से पाये हैं।

दोहा।

सत्संगति स्वच्छन्दता, बिना कृपणता भक्ष।
जान्यो नहिं किहि तप किए, यह फल होत प्रत्यक्ष ॥५१॥

51. I do not know which austere Tapa practised in ths previous existence gives rise to the following fruits. Living an independent life, dining without begging for food, company of friends ready to help in difficulty, listening to Shastras in such a way as will enable one to prepare for the vow of self-control, the slackening of mental restlessness and even when the mind

grows restless, trying to restrain it by thoughtful consideration.

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
येषां निःसंगतांगीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति ॥५२

वे ही प्रशंसाभाजन हैं, वेही धन्य हैं, उन्होंने ही कर्म की जड़ काट दी है—जो अपने हाथों के सिवा और किसी बासन की ज़रूरत नहीं समझते, जो घूम-घूम कर भिक्षा का अन्न खाते हैं, जो निर्मल आकाश को ही अपना वस्त्र समझते हैं, जो ज़मीन को ही अपनी शय्या समझते हैं, जो अकेले रहना पसन्द करते हैं, दीनता से घृणा करते हैं और जिन्होंने आत्मामें ही सन्तोष कर लिया है।

जिन्होंने सबसे मन हटा कर, सब तरह के विषयों को त्याग कर, संसारी माया-जाल काट कर, अपने आत्मा में ही सन्तोष लाभ कर लिया है; जो किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं रखते, यहाँ तक कि जल पीनेको किसी बर्तन को भी पास नहीं रखते—अपने हाथ से ही बर्तन का काम ले लेते हैं; खाने के लिये घर में सामान नहीं रखते, कल के भोजन की फिक्र नहीं करते, आज

इस गाँव में माँग कर पेट भर लेते हैं, तो कल दूसरे गाँव में जा माँगते हैं, एक गाँव में दो रात नहीं बिताते; जो शरीर ढकने के लिये कपड़ों की भी ज़रूरत नहीं रखते, दिशाओं को ही अपना वस्त्र समझते हैं; जो पलँग तोशक और गद्दे तकियों की आवश्यकता नहीं समझते, ज़रासी ज़मीन को ही अपनी खाट समझते हैं, जब नींद आती है, अपने हाथ का तकिया लगा कर सो जाते हैं; जो किसी का संग नहीं करते, अकेले रहते हैं; किसी के सामने दीनता नहीं करते—अपने स्वरूपमें ही मग्न रहते हैं, वे पुरुष सचमुच ही महापुरुष हैं। ऐसे पुरुष-रत्न धन्य हैं। उन्होंने सचमुच ही कर्म-बन्धन काट दिया है। वे ही सच्चे त्यागी और संन्यासी हैं। ऐसेही महापुरुषों के सम्बन्धमें महात्मा सुन्दरदासजीने कहाहै—

काम ही न क्रोध जाके, लोभ ही न मोह ताके।
मद ही न मत्सर, न कोऊ न विकारो है॥
दुःखही न सुख माने, पापही न पुण्य जाने।
हरष न शोक आने, देह हीतें न्यारो है॥
निन्दा न प्रशंसा करे, रागही न द्वेष धरे।
लेन ही न देन जाके, कुछ न पसारो है॥
सुन्दर कहत, ताको अगम अगाध गति।
ऐसो कोउ साधु, सो तो रामजी कूँ प्यारो है॥

छप्पय।

भोजन कों कर पट, दशों दिशि वसन बनाये।
भखै भिख को अन्न, पलंग पृथ्वी पर छाये।
छांड़ि सबन को संग, अकेले रहत रैन दिन।
नित आतम सों लीन, पौन सन्तोष छिनहि छिन।
मनको बिकार, इन्द्रीन को डारे तोर मरोर जिन।
वे धन्य २ सन्यास, घन कर्म किए निर्मूल तिन॥ ५२

52. Praiseworthy are those and they alone who cut down the roots of Karma, who do not need any other vessel but their own hands for the purposes of drinking water etc., who eat only the food procured by leading the life of a waudering mendicant, who consider the endless space to be the only fit garments for them, who have the wide earth alone for their bed and whose mind has been trained into the habit of non-attachment by practising self-contentment.

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो
वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः
जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः॥५३॥

मालिक को राज़ी करना कठिन है। राजाओं के दिल घोड़ों के समान चंचल होते हैं। इधर हमारी इच्छाएँ बड़ी भारी हैं; उधर हम बड़े भारी पद—मोक्ष के अभिलाषी हैं। बुढ़ापा शरीर को निकम्मा करता है और मृत्यु-जीवन नाश करती है। इसलिये हे मित्र! बुद्धिमान् के लिये, इस जगत् में, तप से बढ़ कर और कल्याण-मार्ग नहीं है॥ ५३॥

सेवा-धर्म बड़ा कठिन है। हज़ारों प्रकार की सेवायें करने, अनेक प्रकारको हाँ में हाँ मिलाने, दिन को रात और रातको दिन कहने, तरह-तरहकी खुशामद करने से भी मालिक कभी सन्तुष्ट नहीं होता। राजाओं का दिल अशिक्षित घोड़ों की तरह चंचल होता है। उनका चित्त स्थिर नहीं रहता, ज़रासी देरमें वे प्रसन्न होते हैं, ज़रासी देरमें वे अप्रसन्न होजाते हैं, क्षणभर में गाँव के गाँव बख्शते हैं, क्षणभरमें शूली पर चढ़ाते हैं, इस लिए राजसेवा में बड़ा खतरा है, सुख नहीं है, जीवनकी रक्षा या जान की खैर नहीं है। एक तरफ तो हमारी इच्छाओं और हमारे मनोरथों की सीमा नहीं है; दूसरी ओर हम परमपदके अभिलाषी हैं; इसलिए यहाँ भी मेल नहीं खाता। बुढ़ापा हमारे शरीरको निर्बल और रूपको कुरूप करता है एवं सामर्थ्य और बलका नाश करता है; मृत्यु सिरपर मँडराती है। ऐसी दशामें मित्रवर! कहीं सुख

नहीं है। अगर सुख—सच्चा सुख चाहते हो, तो परमात्मा का भजन करो। उस से आपके इहलोक और परलोक दोनों सुधरेंगे, आप जन्म-मरणके कष्टों से छुटकारा पाकर मोक्षपद पायेंगे। सारांश यह है, कि सच्चा और नित्य सुख केवल वैराग्य और ईश्वर-प्रेममें है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं -

"तुलसी" मिटै न कल्पना, गये कल्पतरु छाँह।
जब लगि द्रवै न करि कृपा, जनकसुता को नाह॥
हित सन हित रति राम सन, रिपु सन वैर विहाय।
उदासीन संसार सन, "तुलसी" सहज सुभाय॥

मनुष्य चाहे कल्पतरु के नीचे क्यों न चलाजाय, जब तक सीतापति की कृपा न होगी, तबतक उसके दुःखों का नाश नहीं हो सकता; इसलिए शत्रुता-मित्रता छोड़, संसार से उदासीन हो, भगवान् से प्रीति करो।

महात्मा सुन्दरदास जी कहते हैं—

काहे कुँ फिरत नर, दीन भयो घर घर।
देखियत तेरो तो, आहार इक सेर है॥
जाको देह सागरमें, सुन्यो शत योजनको।
ताहू कूँ तो देत प्रभु, यामें नहिं फेर है॥
भूखो कोउ रहत न, जानिये जगत माहिं।
कीरी अरु कुंजर, सबन ही कूँ देत है॥

"सुन्दर" कहत, विश्वास क्यूँ न राखे शठ।
वेर वेर समझाय, कह्यो केतो वेर है ॥१॥

काहे कूँ दौरत है दशहुँ दिशि,
तू नर देख कियो हरिजू को।
बैठि रहै दुरिके मुख मूँदि,
उघारत दाँत खवाइहि टूको।
गर्भ थकी प्रतिपाल करो जिन,
छोड़ रह्यो तबहीं जड़ मूको।
"सुन्दर" क्यूँ बिल्लात फिरै अब,
राख हृदे विश्वास प्रभुको ॥२॥

दोहा।

नृप सेवा में तुच्छ फल, बुरी कालकी व्याधि।
अपनो हित चाहत कियो, तौ तू तप आराधि ॥५३॥

53. Masters are not easily pleased and kings are restless in mind like untrained horses. We have great desires while we still cherish in our mind the hope of reaching the great goal of salvation. The body is susceptible to old age and life itself is liable to be destroyed by Death. O friend, there is no better thing in this world for a wise man than practising Penance.

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥
लोला यौवनलालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः५४

देहधारियों के भोग—विषय-सुख—सघन बादलोंमें चमकनेवाली बिजली की तरह चञ्चल हैं। मनुष्योंको आयु या उम्र हवासे छिन्नभिन्न हुए बादलों के जल के समान क्षणस्थायी या नाशमान् है। जवानी की उमङ्ग भी स्थिर नहीं है। इसलिये बुद्धिमानो, धैर्य से चित्तको एकाग्र करके योगसाधन में लगाओ ॥ ५४ ॥

आप आज जिन विषय-सुखों को देखकर फूले नहीं समाते, ये विषय-सुख सदा आपके साथ नहीं रहेंगे। ये आज हैं तो कल नहीं रहेंगे, ये बिजली की चमक के समान चञ्चल हैं। अभी बिजली चमकी और फिर नहीं। ऐसे नश्वर, असार क्षणस्थायी सुखों पर मत भूलो। शोच करो, आप स्वयं नाशमान् हैं। आप सदा इस संसार में नहीं रहेंगे, आपकी ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं। आपका जो दम आता है उसे ही ग़नीमत समझिये। आप एक क़दम रखकर दूसरे क़दम रखने की भी दृढ़ आशा न कीजिये। आपका जीवन हवाके झोंके से छिन्न भिन्न मेघोंके समान है। अभी घटा छारही थीं, देखते

देखते हवा उन्हें कहाँ का कहाँ उड़ा लेगई, आकाश साफ हो गया। यह सब संसार, संसार के सुखभोग, स्त्री-पुत्र धन-रत्नादि सभी स्वप्न की सी माया है। यह दुनिया मुसाफ़िरख़ाना है। रोज़ अनेक आदमी मुसाफ़िरख़ाने, सराय, धर्मशालाओंमें आते हैं और जाते हैं; सदा उनमें कोई नहीं रहता। वे जिस तरह एक दिन या दो तीन दिन ठहरकर चले जाते हैं, उसी तरह आपको भी चन्द रोज़ यहाँ क़याम करके आगे जाना होगा। ये सारे सामान यहाँ के यहीं रह जायेंगे। ये सब ऐसे ही रहेंगे, पर आप न रहेंगे। इसलिये आप होशियार रहिये, भूलिये मत। आप जिस जवानी पर आज इतने इतराते हैं, इतने शृंगार बनाव करते हैं, यह भी चन्द-रोज़ा है। यह चार दिनकी चाँदनी है, इसके बाद अँधेरी रात निश्चयही आवेगी; अर्थात् इसके बाद बुढ़ापा अवश्य आवेगा। उस समय आपकी यह अकड़, यह उछल-कूद, यह ऐंठना, यह मूछें मरोड़ना—सब हवा हो जायगा। आप शीघ्र ही लाठी टेक कर चलने लगेंगे। आपका रूप-स्वरूप नाश होजायगा। लोग जो आपको आज ख़ूबसूरत समझ कर प्यार करते हैं, वे ही आपको देखकर नाक भौं सिकोड़ेंगे। फिर भला, आप ऐसी नश्वर निकम्मी चीज़ों पर क्यों इतना अभिमान करते हैं! आप अहङ्कार को त्यागिये, अपने लिये इस

खिलाड़ी का एक मिट्टी का पुतला मात्र समझिये। सब की शुभ कामना कीजिये, परोपकार कीजिये, और एकमात्र अपने बनानेवाले से प्रीति कीजिये। इसीमें आपका कल्याण है? महात्मा सुन्दर दासजी की भी सुनिये—

बालू के मन्दिर माँहि, बैठि रह्यो स्थिर होइ।
राखत है जीवन की आश, केऊ दिन की॥
पल पल छीजत, घटत जात घरी घरी।
विनशत बेर कहा, खबर न छिन की॥
करत उपाय, झूठे लेन-देन खान-पान।
मूसा इत उत फिरे, ताकि रह्यो मिनको॥ १॥

देह सनेह न छाँड़त है नर।
जानत है थिर है यह देहा॥
छीजत जात घटे दिन ही दिन।
दीसत है घट को नित छेहा॥
काल अचानक आय गहे कर।
ढाह गिराइ करे तन खेहा॥
"सुन्दर" जानि यहै निहचै धरि।
एक निरंजन सू कर नेहा॥२॥

कबीर दास कहते हैं—

कहा भरोसो देह को, विनसि जाय छिन मांहि।
स्वांस स्वांस सुमिरन करो, और यतन कछु नाहिं॥

कुण्डलिया ।

जैसे चंचल चंचला, त्योंहि चंचल भोग ।
तैसेही यह आयु है, ज्यों घट पवन प्रयोग ।
ज्यों घट पवन प्रयोग, तरल त्योंही यौवन तन ।
विनसत लगत न वार, गात ह्वै जात ओसकन ।
देख्यो दुःसह दुःख, देहधारिन को ऐसे ।
साधत शन्त समाधि, व्याधि सों छूटत जैसे ॥५४॥

54. Enjoyments are short-lived like the flash of lightning in the midst of thick clouds. Life is transitory like the water-vapors present in the clouds which are scattered away by the blowing of a heavy gale. Men's attempts to preserve their youth for a long time are also futile. Considering all these things, O wise men ! it is only proper that you direct your attention at once to Yoga which is easy to practise provided you are possessed of the virtues of perseverance and meditation.

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपाली-
मादाय न्यायगर्भद्विजमुखहुतभुग्भूमधूम्रोपकण्ठम् ॥
द्वारंद्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो
मानी प्राणीसधन्योनपुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषुदीनः॥५५॥

वह क्षुधार्त किन्तु मानी पुरुष, जो अपने पेटरूपी खड्डे को भरनेके लिए हाथमें पवित्र साफ कपड़े से ढका हुआ ठिकरा लेकर वन-वन और गाँव-गाँव घूमता है और उनके दरवाज़े पर जाता है, जिनकी चौखट् न्यायतः विद्वान ब्राह्मणों द्वारा कराये हवन के धूएँ से मलिन होरही है, अच्छा है; किन्तु वह अच्छा नहीं, जो समान कुलवालों के यहाँ जाकर माँगता है ॥ ५५ ॥

तुलसी दासजी ने कहा है--

घरमें भूखा पड़ रहे, दस फाके हो जायँ।
तुलसी भैयाबन्धुके,कबहुँ न माँगन जाय॥

और भी किसी ने कहा है—

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितम्।
द्रुमालयः पक्वफलाम्बु भोजनम्।
तृणानि शय्या परधान वल्कलम्।
न बन्धु मध्ये धनहीन जीवनम्॥

व्याघ्र और हाथियों से भरे जङ्गल में रहना भला, वृक्षों के नीचे बसना भला, पके-पके फल खाना और जल पीना भला, घास पर सो रहना और छालों के कपड़े पहन लेना भला, पर भाइयोंके बीचमें धनहीन होकर रहना भला नहीं।

सोरठा।

विप्रन के घर जाय, भीख माँगिवो है भलो।
बन्धुन सों सिरनाय, भोजनहु करिवो बुरो ॥५५॥

55. Worthy of all praise is the hungry but proud man who for the sake of filling the empty pit of his stomach wanders from village to village or from forest to forest, holding in his hand a broken earthen vessel covered with a clean piece of cloth, begging at doors the frames of which have been blackened by the smoke rising from the oblation-fires of learned Brahmans, but it is not proper to demean himself by asking people of equal birth for charity.

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवाशूद्रोथ किं तापसः
किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम्॥
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः५६॥

यह चाण्डाल है या ब्राह्मण है? यह शूद्र है या तपस्वी है? क्या यह तत्वविद् योगीश्वर हैं?—लोगों द्वारा ऐसी अनेक प्रकारकी संशय और तर्क युक्त बातें सुनकर भी, योगी लोग न नाराज़ होते हैं न खुश; वे तो सावधान चित्तसे अपनी राह-राह चले जाते हैं॥५६॥

योगिजन लोगोंकी बुरी-भली बातोंका ख़याल नहीं करते; कोई कुछ भी क्यों न कहा करे। चाहे उन्हे कोई

शूद्र कहे चाहे ब्राह्मण, चाहे भंगी कहे चाहे तपस्वी ; चाहे कोई निन्दा करे चाहे स्तुति ; वे अच्छी बात से प्रसन्न और बुरी बात से अप्रसन्न नहीं होते। सच्चे महात्मा हर्ष-शोक, दुःख-सुख और मान-अपमान सबको समान समझते हैं।

योगेश्वर कृष्ण ने गीताके दूसरे अध्याय में कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

जो दुःखके समय दुःखी नहीं होता, सुखके समय सुखी नहीं होता ; जो राग, भय और क्रोध से रहित है, वह "स्थितप्रज्ञ" मुनि है॥ किसी की बातकी परवा न करनी चाहिये, हाथी की तरह रहना चाहिये। हाथी के पीछे हज़ारों कुत्ते भूँकते हैं, पर वह उनकी तरफ देखता भी नहीं। कबीर दास कहते है—

हस्ती चढ़िये ज्ञानके, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूसनदे झकमारि॥
कबिरा काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ डरिये नहीं, कूकर भूसे हजार॥
जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घट जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, वाकु दुख मानत नाहिं॥

और भी—

सज्जन चित्त कबहुँ न धरत, दुर्जन जनके बोल।
पाहन मारे आमकों, तऊ फल देत अमोल॥

दोहा।

विप्र शूद्र योगी तपी, सुपच कहत कर ठोक।
सबकी बातें सुनत हों, मोकों हर्ष न शोक॥५६॥

56. Yogis or ascetics are neither angry nor pleased with the men who, when they are going on their way, accost them with various epithets such as, "Is he a low-born fellow ?" or "Is he one of a twice-born caste ?" or "Is he a Shudra ?" or "Is he one engaged in the practice of Tapa ?" or "Is he a great Yogi, wise in the realisation of Truth ?"

सखे धन्याः केचित्त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः॥५७॥

हे मित्र! वे पुरुष धन्य हैं, जो शरद्के चन्द्रमाकी चाँदनी से सफ़ेद हुए आकाशमण्डल से सुन्दर और मनोहर रातको वनमें विताते हैं, जिन्होंने संसार-बन्धन को काट दिया है, जिनके अन्तःकरण से भयानक सर्प

रूपी विषय निकल गये हैं और जो सुकर्मों को ही अपना रक्षक समझते हैं ॥ ५७ ॥

वे ही लोग सुखी हैं, वे ही धन्य हैं, जो शरद्की चाँदनी की मनोहर रातमें वनमें बैठे हुए परमात्मा का भजन करते हैं, जिन्होंने संसार के जालोंको काट दिया है, जिन्होंने आशा-तृष्णा राग-द्वेष प्रभृतिको त्याग दिया है, जिनके भीतरी दिलसे विषय रूपी विषैले सर्प भाग गये हैं यानी जिन्होंने विषयोंको विषकी तरह दूर कर दिया है, जिनका चित्त केवल पुण्य और परोपकारमें ही लगा रहता है।

हमें संसारकी प्रत्येक चीज़ से परोपकार की शिक्षा मिलती है। वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते, नदियाँ आप जल नहीं पीतीं, सूरज और चाँद अपने लिये नहीं घूमते, बादल अपने लिये मेह नहीं बरसाते,—ये सब पराये लिये कष्ट सहते हैं। हातिम और विक्रमने पराये लिये नाना प्रकार के कष्ट उठाये, दधीचि और शिविने परोपकारके लिये अपने-अपने शरीर भी देदिये, हरिश्चन्द्रने पराये लिये घोर दुःसह विपत्ति भोगी। जिनका जीवन परोपकार में बीतता है, उन्हींका जीवन धन्य है। शेख़ सादी ने गुलिस्ताँ में कहा है—

चूँ इन्साँरा न बाशद फ़ज़लो ऐहसाँ।
चे फ़र्क़ज़ आदमी ता नक़्शदीवार॥

यदि मनुष्य में परोपकार करने की इच्छा नहीं है, तो उसमें और दीवार पर खिंचे हुए चित्रमें क्या फ़र्क़ है ?

जिससे प्राणी मात्र का भला हो, वही मनुष्य धन्य है। उसीकी माँका पुत्र जनना सार्थक है। रहीम कवि कहते हैं—

बड़े दीनको दुख सुने, देत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हती,कहु"रहीम"पहिचानि॥
धनि"रहीम"जल पङ्कको, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥

दोहा ।

ते नर जगमें धन्य हैं, शरदशुभ्र निशि माहिं ।
तोड़े बन्धन जगतके, मनतें विषयन काहिं ॥५७॥

सोरठा ।

विषय सर्पको मारि, चित लगाय शुभकर्म में ।
पुण्यकर्म शुभ धारि, त्यागे सब मन वासना ॥५७

57. O friend! happy are those who spend their nights made beautiful by the bright autumn moon-light spreading over the expanse of the heavens, seated in a corner of a forest, their tight worldly bonds broken asunder, the poison of their snake-

like passions removed from inside their minds and their hearts resting under the shelter of a multitude of good actions done in the course of their life.

एतस्माद्विरमेंद्रियार्थगहनादायासकादाश्रया-
च्छ्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात् ॥
शान्तं भावमुपैहि संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं
मा भूयो भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना॥५८॥

हे चित्त! अब विश्राम ले, इन्द्रियोंके सुख सम्पादनके लिए विषयोंकी खोजमें कठोर परिश्रम न कर; आन्तरिक शान्तिकी चेष्टा कर, जिससे कल्याण हो और दुःखों का नाश हो ; तरङ्गके समान चञ्चल चालको छोड़ दे; संसारी पदार्थों में और सुख न मान ; क्योंकि ये असार और नाशमान् हैं। बहुत कहना व्यर्थ है, अब तू अपने आत्मा में ही सुख मान ॥ ५८ ॥

अरे दिल ! अब तू इन्द्रियों के लिए विषय-सुखोंकी खोजमें मत भरम, उनके लिए तकलीफ़ न उठा, शान्त हो जा, उनमें कुछ भी सुख नहीं है,वे तो विषसे भी बुरे और काले नाग से भी भयङ्कर हैं। अरे! अब तो मेरा कहना मान और अपनी चालों को छोड़। देख, तेरे सिर पर काल मँडरा रहा है। वह एक ही वारमें तुझे निगल जायगा। अरे भैय्या, ये इन्द्रियाँ बड़ी ख़राब है, इन

में दया-माया नहीं है, यह शैतान की तरह कुराह पर लेजाती हैं। तू इनसे सावधान रह और इनके भुलावे में न आ। अब शान्त हो और कष्ट सहना सीख। अपनी चंचल चाल छोड़, जगत्को असार और स्वप्नवत समझ। इस जञ्जालसे अलग हो। बराबर इसी की इच्छा न कर। अपने आत्मामें ही मग्न हो। इस तरह अवश्य तेरा कल्याण होगा।

कल्याण कैसा ? जब तू ज्योतिः स्वरूप आत्माको देख लेगा, तब तू उसी में सन्तुष्ट रहेगा, उससे कभी न डिगेगा। उसके आगे और सब लाभ तुझे हेच जँचेंगे। योगेश्वर कृष्णने ऐसी ही बात गीता के छठे अध्याय में कही है। उस सुखको सब नहीं जान सकते, जो अनुभव करता है वही जानता है। उसे कोई कह कर बता नहीं सकता। कबीर दास कहते हैं—

ज्यों नर नारी के स्वादको, खसी नहीं पहचान।
त्यों ज्ञानी के सुख को, अज्ञानी नहीं जान॥

स्त्री पुरुष के सुख को जैसे हींजड़ा नहीं जान सकता, वैसे ही ज्ञानी के सुख को अज्ञानी नहीं जान सकता।

छप्पय।

एरे चित! कर कृपा, त्याग तू अपनी चालहि।
शिर पर नाचत खड्यौ, जान तू ऐसें कालहि।

ये इन्द्रिगण निठुर, मान मत इनको कहिवौ।
शान्तभाव कर ग्रहण, सीख कठिनाई सहिवौ ।
निजगति तरंग सम चपल तजि, नाशवान जग जानिये।
जानि करहु तासु इच्छा, कछू शिव स्वरूप उर आनिये ॥५८॥

58. O mind, do thou take rest now from thy lab rious efforts in acquiring the object of sensual pleasure, have recourse to internal peace which is the only way to bliss and which removes all sorts of afflictions, give up thy current-like restlessness and never again take pleasure in worldly things which are liable to destruction. In short, do thou now be pleased with thy own self.

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना
भूशय्यानववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा
चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते॥५९॥

ऐ प्यारी बुद्धि। अब तू पवित्र फलमूलों से अपनी गुज़र कर ; बनी बनाई भूमि-शय्या, और वृक्षोंकी छाल के वस्त्रों से अपना निर्वाह कर। उठ, हम तो वनको जाते हैं। वहां उन मूर्ख और तंग-दिल अमीरों का

नाम भी नहीं सुनाई देता, जिन की ज़बान धनकी बीमारीके कारण उनके वशमें नहीं है ॥५८॥

जिन धनवानों की ज़बानमें लगाम नहीं है, जो अपनी धनकी बीमारीके कारण मुँहसे चाहे जो निकाल बैठते हैं, ऐसे मदान्ध और नीच धनी जंगलों में नहीं रहते, इसलिए बुद्धिमान को वहाँ चला जाना चाहिये। वहाँ काहेका अभाव है? खानेको फलमूल हैं, पीनेको शीतल जल है, रहने को वृक्षोंकी शीतल छाया है,पहन-ने को वृक्षोंकी छाल है, सोने को पृथ्वी है। वहाँ दुःख नहीं है, अशान्ति नहीं है; किन्तु और सभी जीवन-धारणोपयोगी पदार्थ हैं।

जो आशाको त्याग देंगे, वह तो धनियोंके दास क्यों होंगे? पर धनियों को भी इतराना न चाहिये। यह धन सदा उनके साथ न रहेगा। इसे वे अपने साथ न ले जायँगे। सम्भव है, यह उनके सामने ही विलाय जाय। फिर ऐसे चञ्चल धन पर अभिमान किस लिये!

गिरधर कवि कहते हैं—

कुण्डलिया।

दौलत पाय न कीजिये, सपनेमें अभिमान।
चंचल जल दिन चारिको, ठाउँ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै॥

कह गिरधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत ।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सबही के दौलत ॥

किसी को कड़वी और बुरी लगनेवाली बात न कहनी चाहिये। ज़बान का ज़ख्म तीर के ज़ख्म से भारी होता है। तीर का ज़ख्म मिट जाता है,पर ज़बानका ज़ख्म नहीं मिटता। इस जगत् में जो जैसा करता है, वैसा ही पाता है। जौ बोता है, जौ काटता है; गेहूँ बोता है, गेहूँ काटता है। जो दूसरों का दिल दुखाता है, उसका दिल भी दुखाया जायगा। जो जैसी कहेगा, वैसी सुनेगा। उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है—

बद न बोले ज़ेर गर्दूं, गर कोई मेरी सुने ।
है यह गुम्बद की सदा, जैसी कहे वैसी सुने ॥

आसमान के नीचे किसी को बुरी बात ज़बान से न निकालनी चाहिये। यह तो मठके अन्दर की आवाज़ है, जैसी कहोगे उसकी प्रतिध्वनि के रूपमें वैसी ही सुनोगे। और भी एक कविने कहा है—

ऐसी बानी बोलिये, मनका आपा खोय ।
औरनको शीतल करे, आपौ शीतल होय ॥

तुलसी दासजी ने कहा है:—

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम बचन निरमोष ।
तुलसी कबहुँ न छोड़िये, शील सत्य सन्तोष ॥

धनी और निर्धन का भेद तभी तक है, जब तक कि मनुष्य ज़िन्दा है ; मरने पर सभी बराबर हो जाते हैं। किसीने कहा है—

कितने मुफ़लिस होगये, कितने तवंगर होगये।

ख़ाक में जब मिलगये, दोनों बराबर होगये॥

दोहा।

बक्कल वसन फल असन कर, करिहौं बन विश्राम।

जित अविवेकी नरन को, सुनियत नाहीं नाम॥५६॥

59. O thou my dear Reason, be now contented with the wholesome roots and fruits of the forest for food, with the bare earth for a bed and with the bark of trees for clothing. Rise and let us go to the forest where even the names of foolish and narrow-minded wealthy men who have no control over their tongue on account of their diseased and ignorant minds, is not heard.

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्ध चूड़ामणौ
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासङ्गमङ्गीकुरु॥
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः॥६०॥

ए चित्त ! अब मोह छोड़ और शिर पर अर्द्धचन्द्र धारण करनेवाले भगवान् शिव से प्रीति कर और गंगा किनारेके वृक्षोंके नीचे विश्राम ले। देख, पानीकी लहर, पानीके बबूले, बिजली की चमक, आगकी लौ, स्त्री, सर्प, और नदी-प्रवाहकी स्थिरता का कोई विश्वास नहीं ; क्योंकि ये सातों चञ्चल हैं ॥६०॥

हे मन ! तू स्त्रीके प्रेममें मत भूल ; यह बिजलीकी चमक, नदीके प्रवाह, नदीकी तरङ्ग प्रभृति की तरह चञ्चल है। स्त्रीके प्रेमका कोई ठिकाना नहीं ; आज यह तेरी है, कल यह पराई है। एक करवट बदलनेमें यह पराई हो जाती है। इसकी झूठी प्रीतिमें कोई लाभ नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचे हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार॥

यदि तुझे प्रीति ही करनी है, तो चल गंगा किनारे के वृक्षोंके नीचे चल बैठ और आशुतोष भगवान् चन्द्रशेखर शिवजीसे प्रीति कर। उनकी प्रीति सच्ची और कल्याणकारी है।

तुलसीदासजी ने कहा है—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल॥

सन्मुख ह्वै रघुनाथ के, देइ सकल जग पीठि ।
तजै कँचुरी उरग ज्यों, होत अधिक अति दीठि ।

छप्पय ।

मोह छाँड़ मन मीत; प्रीति सों चन्द्रचूड़ भज ।
सुर सरिता के तीर, धीर घर दृढ़ आसन सज ।
शमदम भोग विराग, त्याग तपको तू अनुसरि ।
वृथा विषय बकवाद, स्वाद सबही तू परिहरि ।
थिर नाहिं तरंग बुदबुद तड़ित, अगिन शिखा पन्नग सरित ।
त्योंही तन जोबन धन अथिर, चल दलदल कैसे चरित ॥ ६० ॥

60. O my mind, do thou give up all attachment now and cherish at heart a deep love for the Great Shiva, Who bears the new moon in His forehead and take up thy sojourn on the land by the side of the heavenly river Ganges. Who ever trusts the currents of the ocean, the bubbles of water, the streaks of lightning, women, the flames of burning fires, serpents and the flow of rivers, all of which are uncertain in their conduct ?

अग्रे गीतं सरस कवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः
पृष्ठे लीलावशपरिणतिश्चामरग्राहिणीनाम् ॥

यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं
नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥६१॥

हे मन ! तेरे सामने चतुर गवैये गाते हों, दाहिने बायें दक्खन देशके उत्तम कवि सरस काव्य सुनाते हों, तेरे पीछे चँवर ढोलनेवाली सुन्दरी स्त्रियों के कंकनोंकी मधुर झनकार आती हो,—यदि ऐसे सामान तुझे मयस्सर हों, तो तू संसार रसास्वादन में मग्न हो; नहीं तो, सब का ध्यान छोड़, निर्विकल्प समाधिमें लीन हो ॥ ६१ ॥

61. If thou hast in thy front the singing of musicians, on thy sides the reciting of elegant poetry by learned southerners, behind thee the tinkling sound of the anklets of maids waving chamars, then there may not be any objection to thy giving up thyself to the enjoyment of worldly pleasures. But if, O mind, thou hast not all these things, it behoves thee at once to enter into the Nirvikalpa Samadhi (meditation of God without thinking of anything else).

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभंगुरा-
त्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ॥
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणिबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥ ६२ ॥

हे बुद्धिमानो ! स्त्रियोंके संग से बचो, क्योंकि उनके संगसे जो सुख मिलता है, वह चणिक है। आप मैत्री, करुणा, और बुद्धिरूपी वधूके साथ संगम करो। जिस समय नरकमें सज़ा मिलेगी, उस समय हारों से शोभित स्तनद्वय और उनकी घुँघरोंदार कर्धनियों से सुशोभित कमरें तुम्हारी सहायता न करेंगी ॥६२॥

मनुष्यो, स्त्रियों में मन मत लगाओ, उनके साथ रहने, उनके साथ संगम करनेसे सुख होता है, पर वह सुख नश्वर और चणस्थायी है। ऐसा सुख नहीं है, जो सदा रहे। परिणाममें, उससे अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। जो सुख अनित्य है, शेषमें दुःख का मूल है, रोगों की खान है, उस सुखको सुख समझना बुद्धिमानों का काम नहीं है। अगर आप को संगम ही करना है, तो आप सहानुभूति, परोपकार वृत्ति एवं प्रज्ञारूपी वद्ध के साथ संगम कीजिये। इनके साथ संगम करने और इनके साथ प्रीति करनेसे आपको अनित्य सुख मिलेगा। ऐसा सुख मिलेगा, जो इस लोक और परलोकमें सदा स्थिर रहेगा।

जिन लोगोंने पहले दूसरों के दुःख दूर किये हैं, जिन्होंने परोपकार के लिए जानें दी हैं, जिन्होंने ज्ञानसे काम लिया है, उनका भला ही हुआ है। अगर आप स्त्री-सुख में भूले रहोगे, तो जब आपको नरक की

भयङ्कर यातनायें भोगनी पड़ेंगी, जब यमदूतों के डण्डे आप पर पड़ेंगे, क्या उस समय स्त्रियों के हारों से सुशोभित स्तन-मण्डल और करधनियों से शोभायमान पतली कमरें आपकी रक्षा कर सकेंगी ? नहीं, इनसे कोई लाभ न होगा, उस समय ये आड़े न आयेंगे। उस समय परोपकार करके जो पुण्य सञ्चय किया होगा, वही आपकी रक्षा करेगा। बुद्धि से काम लोगे तो भला होगा ; क्योंकि बुद्धि ही आपको नरक से बचने की राह बतावेगी ; किन्तु स्त्री तो आपको सीधी नरक की राह दिखावेगी। आश्चर्य है, कि अज्ञानी लोग अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा समझते हैं। अपने सच्चे मित्रोंसे प्रीति नहीं करते, किन्तु झूठे और कुराह में ले जानेवालों से प्रीति करते हैं।

महात्मा सुन्दर दास ने कहा है :—

विषहीकी भूमि मांहि, विषके अंकूर भये।
नारी विषबेली बढ़ी, नखशिख देखिये॥
विषहीके जर मूल, विषहीके डार पात।
विषहीके फूल फल, लागे जु विशेखिये॥
विषके तंतू पसार, उरझाई आंटी मार।
सब नर वृक्ष पर, लपटेहि लेखिये॥
सुन्दर कहत, कोउ संत तरु बचिगये।
तिनके तो कहूँ, लता लागि नहिं पेखिये॥ १॥

कामिनीको अङ्ग, अति मलिन महा अशुद्ध।
रोम रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं ॥
हाड मांस मज्जा मेद, चामसूँ लपेट राखे।
ठौर ठौर रकतके, भरेई भंडार हैं ॥
मूत्रहू पुरीष आँत, एकमेक मिल रही।
औरही उदर माँहि, विविध विकार हैं ॥
सुन्दर कहत, नारी नखशिख निंद्यरूप।
ताहि जो सराहै, सो तो बडोई गँवार है ॥ २ ॥

रसिकप्रिया रसमंजरी, और शृंगारहि जान।
चतुराई करि बहुत विधि, विषय बनाई आन ॥
विषय बनाई आन, लगत विषयिनकूँ प्यारी।
जागे मदन प्रचंड, सराहै नखशिख नारी ॥
ज्यूँ रोगी मिष्टान खाइ, रोगहि विस्तारै।
सुन्दर ये गति होइ, जोइ रसिकप्रिया धारै ॥ ३ ॥

सोरठा ।

तजि तरुणी सों नेह, बुद्धि वधूसों नेह कर ।
नरक निवारत येह, वहै नरक ले जात है ॥६२॥

62. O wise men, restrain yourselves from the company of women which gives only transitory pleasure, and associate with the virtues of sympathy, benevolence and

wisdom. In hell, their fat breasts adorned with necklaces or beautiful waists ornamented with tinkling waist-chains will not help you in any way.

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ॥
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेष पन्थाः ६२

किसी भी जीव की हिंसा न करना, पराया माल न चुराना, सत्य बोलना, समय पर सामर्थ्यानुसार दान करना, परस्त्रियों की चर्चामें चुप रहना, गुरुजनों के सामने नम्र रहना, सब प्राणियों पर दया करना, भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें समान विश्वास रखना,—ये सब नित्य सुख प्राप्त करने के अचूक रास्ते हैं ॥६२॥

यदि आप मोक्षकी अचूक राह चाहते हो, यदि आप नित्य सुख-शान्ति चाहते हो, यदि आप चिरस्थायी कल्याण चाहते हो, तो आप किसी भी प्राणीका विनाश मत करो ; अपने पेटके लिये किसी की जान न मारो। जब मौक़ा आवे, अपनी शक्ति अनुसार ग़रीबों और मुहताजों को दान दो, उनके दुःख दूर करो, उनके दुःखको अपना दुःख समझ कर उनका कष्ट निवारण करो।

जहां पराई स्त्रियों का ज़िक्र होता हो वहां मत बैठो, यदि बैठना ही पड़े तो तुम अपनी ज़बान से कुछ मत कहो। माता-पिता और गुरुके सामने सदा नम्र रहो, उनकी आज्ञा पालन करो, उनका मान-सम्मान करो; भूल कर भी उनका अपमान मत करो। छोटे-बड़े सभी प्राणियों पर दया करो; सभी शास्त्रों को समान समझो; किसी में विश्वास और किसी में अविश्वास न करो, क्योंकि सभी का ध्येय एक ही है, सभी वहीं पहुँचते हैं। जिस तरह नदियाँ टेढ़ी-सूधी बहती हुई समुद्र में ही जा मिलती हैं; उसी तरह सभी शास्त्र अपनी-अपनी राहों से मोक्ष या परमात्माकी ही राह बताते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं रखते, तर्क-वितर्क के झमेले में पड़ते हैं, वे वृथा भटकते हैं और अपनी मञ्ज़िल मक़सूद—परमपद तक नहीं पहुँचते।

महात्मा तुलसीदासजी ने ये सब विषय कैसी खूबी से संक्षेप में ही कह दिये हैं :—

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान।
सुखद सुनै रत सत्यव्रत, स्वर्ग सप्त सोपान॥
वञ्चक विधिरत नर अनय, विधि हिन्सा अति लीन।
तुलसी जग महँ विदित वर, नरक निसैनी तीन॥

63 Refraining from killing all sorts of living beings and from stealing other

people's property, speaking the truth, giving alms according to one's means when an occasion for charity arrives, remaining silent in a place where men are talking about other people's wives, demolishing the springs of all the desires, behaving humbly before teachers and elders, kindness to all living beings and having equal faith in the teachings of different Shastras are the infallible paths which lead to the acquirement of everlasting bliss.

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणी मास्म भू-
र्भोगेभ्यः स्पृहयालवो न हि वयं का निःस्पृहाणामसि।
सद्यःपूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे॥ ६४॥

हे मा लक्ष्मी! अब किसी और को खोज, मेरी इच्छा न कर; अब मुझे विषय-भोगों की चाहना नहीं है; मेरे जैसे निस्पृह—इच्छा-रहितों के सामने तू तुच्छ है। क्योंकि अब मैंने हरे ढाकके पत्तोंके दोनोंमें भिक्षाके सत्तू से गुज़ारा करनेका सङ्कल्प कर लिया है॥ ६४॥

जो अपनी इच्छा का नाश कर देता है, जो किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रखता, वह लक्ष्मी क्या—संसार के बड़े-से-बड़े सुख-भोग और धन-दौलतको तुच्छ समझता

है ; वह बादशाहों को भी माल नहीं समझता। जो जङ्गल के फलमूलों पर गुज़र कर लेता है या भिक्षा के सत्तूको ढाक के पात में पानी से घोल कर पी जाता है, वस्त्रकी भी ज़रूरत नहीं रखता, उसे किसकी परवा ? उसे दुःख कहां ? यदि मनुष्य सच्चा सुख चाहे, परमपद या परमात्मा को चाहे तो "इच्छा" को त्याग दे। सब आफतों की जड़ "इच्छा" ही है।

दोहा।

मोकों तजि भजि औरकों, एरी लक्ष्मी मात,
हौं पलाश के पात में, माँग्यो सतुआ खात ॥६४॥

64. O mother Lakshmi (goddess of wealth) seek some other man and do not desire to make me thy companion. I no longer have a desire for pleasures. What art thou to such desireless persons as I ? I have now made up my mind to carry on my living by eating fried grain-flour soaked with water, obtained by begging, out of a receptacle made of a green Palash-tree leaf.

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ॥
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ॥ ६५ ॥

पहले हमारा आपका इतना गाढ़ा सम्बन्ध था, कि आप थे सो मैं था, और मैं था सो आप थे। अब क्या फ़र्क़ हो गया है, कि मैं मैं ही हूँ और आप आप ही हैं ॥६५॥

पहले आपमें और मुझ में भेद नहीं था। जो आप थे सो मैं था और मैं था सो आप थे। मैं और आप दोनों ही एक से थे। आप और मैं दोनों ही पहले विषयासक्त थे; किन्तु अब बड़ा भेद हो गया है; यानी आप अब तक विषयासक्त ही हैं, पर मैं विषयों से विरक्त हो गया हूँ। आपने अब तक संसार के झूठे सुखों—विषय-वासनाओं का परित्याग नहीं किया है; पर मित्र, मैं तो अब इनसे घबरा गया—थक गया; मुझे इनमें कुछ भी सारतत्त्व न दीखा, इसलिये मैंने अब सबसे किनारा करके वैराग्य ले लिया है। आप अभी तक नरक में ही हैं; पर मैं विवेक-बुद्धि से काम लेकर, नरकसे निकल कर स्वर्ग में आ गया हूँ। आप अभी तक दुःख के बीज ही बो रहे हैं, पर मैं अब सुख के बीज बो रहा हूँ। मित्र! तुम भी मेरी तरह इन भयङ्कर जञ्जालों को छोड़ कर, मेरी जैसी सुख की राह पर क्यों नहीं आ जाते? मित्र-वर! इसी राह में सुख है; उस राहमें घोर दुःख और नरक-यातनायें हैं। संसारको छोड़ने औरभगवत् से प्रीति करने में बड़ा आनन्द है। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है:—

हे स्त्री ! अब तू अपनी काममद पैदा करनेवाली दृष्टि को रोक ले, हम पर कटाक्षवाण न चला। तेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा। क्योंकि अब हमने विषयों को तृणवत् त्याग दिया है। पृ० १४५ श्लोक ६६

दुनिया से ज़ौक़, रिश्तये उल्फ़तको तोड़ दे।
जिस सर का है यह बाल,उसी सर में जोड़ दे॥

दोहा

तुम हम हम तुम एक हैं, सब विधि रह्यो अभेद।
अब तुम तुम हम हमहिं है, भयो कठिन यह भेद ॥६५॥

65. I had such a staunch connection with you before. that it seemed as if you were I and I was you. What has happened now that you have become yourself and I myself again ?

बाले लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टिपाताः
किं क्षिप्यंते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ॥
संप्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ॥ ६६ ॥

ए बाला! अब तू लीला से अपनी आधी खुली आँखों से मुझ पर क्यों कटाक्ष-बाण चलाती है? अब तू कामसद पैदा करनेवाली दृष्टि को रोक ले; तेरे इस परिश्रमसे तुझे कोई लाभ न होगा। अब हम पहले जैसे नहीं रहे हैं। हमारी जवानी चली गई है। अब हमने वन में रहने का निश्चय कर लिया है और

मोह त्याग दिया है ; अब हम विषय-सुखों को तृणसे भी निकम्मा समझते हैं ॥६६॥

महाकवि दाग़ कहते हैं :—

तोबा जो मैंने की, निकल आया ज़रासा मुँह ।
वह रंग रूप ही नहीं, सुबहे बहार का ॥

बसन्त को अपने सौन्दर्य्य का बड़ा अभिमान था। जबसे मैंने शराब पीनेसे तोबा कर ली है, तबसे बसन्त लक्ष्मीका मुँह फीका पड़ गया है। जब तक मैं शराबी था, तभी तक उसकी शोभा का कायल था। अब तो मुझे उसमें कुछ भी विशेषता मालूम नहीं होती।

66. O young lady why art thou playfully peeping at us out of half-closed eyes? Stop thy love-inspiring glances as all thy labour will be fruitless. Now we are different from what we were before. Our youth has gone. We are now bent on living in the forest. Our attachments have been given up and we look at the enjoyments of the world like a worthless straw.

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल ।
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ॥

गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमबाणव्यतिकर-
ज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति ६७॥

यह बाला स्त्री मुझ पर बार-बार नील कमल की शोभा से भी सुन्दर नेत्रों के कटाक्ष क्यों मारती है? मैं नहीं समझता, इसका क्या मतलब है? अब तो मेरा मोह जाता रहा है—काम के पुष्पबाणों से निकली हुई आगकी ज्वाला शान्त हो गई है। आश्चर्य है, कि अब तक भी यह मूर्खा बाला अपनी कोशिशों से बाज़ नहीं आती! ॥६७॥

जिन का मोह-जाल कट जाता है, जिनकी विषय-वासना बुझ जाती है, जो स्त्रियों की असलियत को समझ जाते हैं,जो उनको नरककी नसैनी समझ लेते हैं, उन पर स्त्रियों के कटाक्ष-बाण असर नहीं करते। हाँ, वे अपने स्वभावानुसार अपने तीखे-तीखे बाण चलाया ही करती हैं—अपने जाल बिछाया ही करती हैं; पर तत्त्ववित् लोग उनके जाल में नहीं फँसते। उन पर उनके अचूक बाण फेल हो जाते हैं।

दोहा।

केहि कारण डारत वयन, कमलनयन यह नार।
मोह काम मेरे नहीं, तऊ न तिय चित हार ॥६७॥

67. Why does this young woman continuously throw at me glances out of eyes which are beautiful like a lotus-leaf? I wonder what is her object in doing so! My passions have now gone and the fire lit up within my heart by concussion produced by the striking of cupid's arrows of flowers has been extinguished. It is strange that the foolish damsel does not quit her efforts even now!

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥
किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपांकुर-
च्छायाचंचलमाकलय्य सकलं संतो वनांतं गताः॥६८॥

क्या सन्तों के रहने के लिये उत्तमोत्तम महल न थे, क्या सुनने के लिये उत्तमोत्तम गान न थे, क्या प्यारी प्यारी स्त्रियों के संगमका सुख न था, जो वे लोग वनों में रहने को गये? हाँ, सब कुछ था, पर उन्होंने इस जगत् को गिरनेवाले पतङ्ग के पङ्खों से उत्पन्न हवा से हिलते हुए दीपक की छाया के समान चञ्चल समझ कर छोड़ दिया। अथवा उन्होंने मूर्ख पतङ्ग की भाँति, जो हवा से हिलते हुए दीपक की छाया में घूस-घूस कर अपने तईं जला कर भस्म कर देता है, संसार को अपना नाश कराते देख कर संसार को छोड़ दिया ॥६८॥
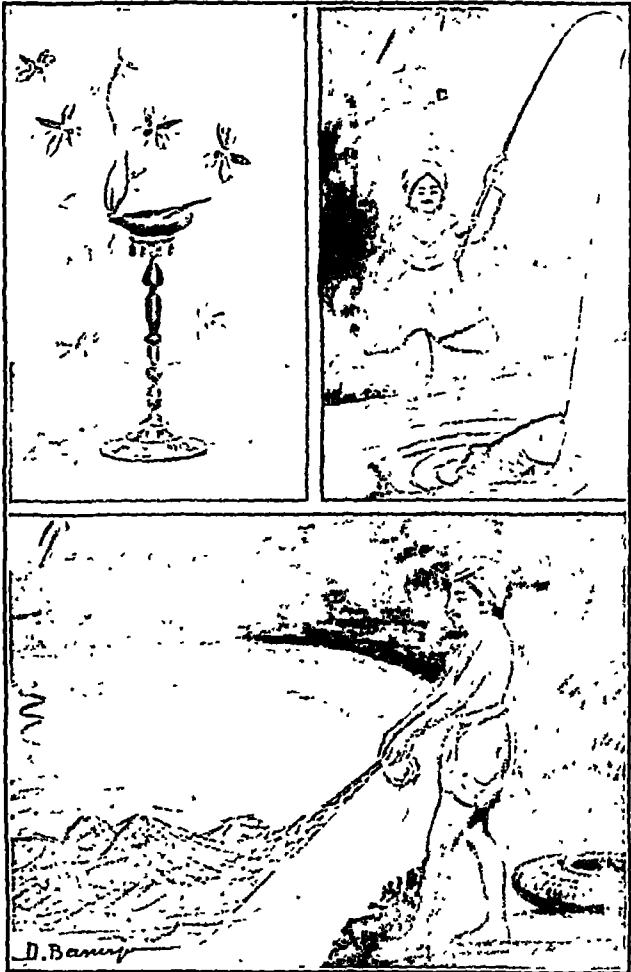
अज्ञानी मनुष्य पतङ्ग और मछलियों की तरह संसारी माया मोह में फँस कर अपना नाश करते हैं।

[पृष्ठ १४८ श्लोक ६८

यह संसार दीपक की लौ के समान है और इसमें बसनेवाले जीव पतङ्गके समान हैं। जिस तरह मूर्ख पतङ्ग दीपक से मोह करके और उस पर गिर-गिर भस्म होते हैं, उसी तरह मनुष्य इस संसार के असल तत्त्व को न समझ कर, इसके मोहमें फँस कर, इसमें नाश होते हैं। जिस तरह पतङ्ग नहीं समझता, कि दीपक से प्रेम करने में मेरे कुछ हाथ न आवेगा, बल्कि मेरी जान ही जायगी; उसी तरह संसारी आदमी नहीं समझते, कि इन संसारी विषय-वासनाओं में फँस कर, इन से प्रेम करके हम अपना नाश करा बैठेंगे। जो बुद्धिमान और विचार-वान हैं, वे इस बात को समझते हैं; अतः संसारी पदार्थों से मोह नहीं करते और अपने नाश से बचते हैं। वे संसार को अनित्य और नाशकी निशानी समझ कर, इससे मन हटा कर परमात्मामें मन लगाते हैं। वे अपने तईं दुनियाका मुसाफ़िर मात्र समझ कर मौत का हरदम ख़याल रखते हैं। महात्मा कबीरने कहा है—

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।
को काहू को है नहीं, सब देखा ठोक बजाय॥
"कबिरा" रसरी पाँव में, कहँ सोवै सुख चैन।
स्वास नकारा कूँच का, बाजत है दिन रैन॥
इस औसर चेता नहीं, पशु ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अन्त परी मुख खेह॥

छप्पय ।

महल महारमणीक, कहा बसिबे नाहिं लायक ।
नाहिं न सुनबे जोग, कहा जो गावत गायक ।
नवतरुणी के संग, कहा सुखहू नाहिं लागत ।
तो काहेको छाँड़ छाँड़, ये बनको भागत ।
इन जान लियो या जगतकों,जैसे दीपक पवनमें ।
बुझिजात छिनकमें छवि भर्‌यो, होत अंधेरा भवन में ॥६८॥

68. Were there no comfortable mansions for the holy men to live in or musicians' songs to hear or the pleasure of the company of dearly loved women to enjoy, that these holy men went to live in the forests? Finding all the mankind bent upon self-distruction like the foolish moth, which flies here and there in the shade of a lamp seeking to throw itself on its flame which is continually being fluttered by the wind, they went to the forests.

किं कन्दाःकन्दरेभ्यःप्रलयमुपागता निर्झरा वा गिरिभ्यः
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलेभ्यश्च शाखाः॥
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलान
दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयवशपवनानर्तितलभ्रूलतानि॥६९॥

क्या पहाड़ों की गुफाओं में कन्दमूल और उनकी चट्टानों में पानी के झरने नहीं रहे, क्या छालवाले वृक्षों में रसीली फलवती शाखायें नहीं रहीं, जो लोग उन अभिमानी और नीचों के सामने दीनता करते हैं, जिनकी भौहें मारे अभिमान के चढ़ी रहती हैं, जिन्होंने बड़े कष्टसे थोड़ासा धन जमा कर लिया है ॥६८॥

पहाड़ों में रहने को गुफायें, खाने को कन्दमूल, पीने को उनके झरनों का जल और वृक्षों में मीठे-मीठे रसीले फल मौजूद हैं ; फिर भी लोग उन धनियों की टेढ़ी भृकुटियोंको क्यों देखते हैं, उनकी टेढ़ी-सूधी क्यों सहते हैं, जिनकी आँखें उस थोड़े से धनके मद से नहीं खुलतीं, जो उन्होंने बड़े-बड़े कष्टोंसे येनकेन प्रकारेण जमा कर लिया है ? ऐसे नीच अभिमानियोंसे अपमानित होने की अपेक्षा पहाड़ों में रहना और फलमूल तथा शीतल जल पर गुज़ारा करना भला। इससे उनकी आत्मा खूब सुखी होगी ; अभिमानी नीच धनियों की बुरी बातों से आत्मा जल-जल कर खाक होती है।

अगर कुछ भी समझ हो, ज़रा भी आत्मप्रतिष्ठा का खयाल हो, तो मनुष्य को अपनी "इच्छा"का नाश करना चाहिये। इच्छारहित मनुष्य सात विलायतोंके बादशाह को भी तुच्छ समझता है। धनियोंसे दीनता करना और

माँगना बड़ी बुरी बात है। देखिये, गोस्वामि तुलसी दासजी प्रभृति महापुरुषोंने कहा है—

तुलसी कर पर कर करो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन करो॥
माँगन मरन समान है, मत कोई माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

अगर दीनताही करनी हो तो परमात्मासे करो। उसके आगे दीनता करनेसे सभी इच्छायें पूरी हो सकती हैं।

तेरी बन्दानवाज़ी, हफ़्त किशवर बख़्फा देती है।
जो तू मेरा जहाँ मेरा, अरब मेरा अजम मेरा॥ दाग़

तेरी सेवा करनेसे सातों वलायतोंका राज मिल जाता है। जब तू अपना हो जाता है, तब सभी अपने हो जाते हैं। कबीर ने कहा है—

थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जाने कोय।
सूत लगे न बिनावनी, सहजे तनसुख होय॥
साईं सुमिर मत ढीलकर, जा सुमरे तें लाह।
इहाँ ख़लक़ ख़िदमत करे, उहाँ अमरपुर जाह॥

छप्पय।

कहा कन्दराहीन भये, पर्वत भूतल से।
झरना निर्जल भये, कहा जे पूरित जल से।

कहा रहे सब वृक्ष, फूल फल बिन मुरझाये ।
सहे खलन के बैन, अन्धता जो मद छाये ।
कर संचित धन जे स्वल्प हूँ, इत उत फेरें भ्रू विकट ।
रे मन ! तू भूल न जाहु कहुँ, इन खल पुरुषन के निकट ॥६६॥

69. Have the wild roots in the caves of mountains and the springs of water flowing out of rocks disappeared or the branches of trees bearing juicy fruits been destroyed, that people look supplicatingly towards the faces of proud and evil-minded persons, whose brows often contract with vanity owing to the little wealth, which they possess after having laboured hard for it ?

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥ ७० ॥

हिमालय पर्वत की वह चट्टानें जो गङ्गाजल की लहरों से उठे हुए छींटोंसे शीतल हो रही हैं और जहाँ जगह-जगह विद्याधर बैठे हैं क्या अब नहीं रहीं हैं, जो लोग अपमान से मिले हुए पराये टुकड़ों पर गुज़र करते हैं ? ॥७०॥

पराये टुकड़ों पर गुज़र करने की अपेक्षा मर जाना भला है। अगर माँगना ही हो, तो माँगने की विधि चातक से सीखनी चाहिये। वह एक से ही माँगता है, दूसरे से हरगिज़ नहीं माँगता, चाहे मर क्यों न जाय; और माँगने में भी यह खूबी, कि वह कभी अधीन होकर नहीं माँगता, सिर नवा कर नहीं लेता। वह छोटोंसे नहीं माँगता; एक घनश्याम (बादल) सेही माँगता है। चातकके समान याचक और वारिद (बादल) के समान दानी जगत् में कौन है? जो ओछोंसे माँगते हैं, जने-जनेके पैर पकड़ते हैं, उनको धिक्कार है! इसलिये मनुष्यो! पपहिये की तरह एकमात्र घनश्यामसे ही माँगो। महात्मा तुलसीदासजी ने कहा है:—

"तुलसी" तीनों लोक महँ, चातकही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता, किये दूसरो नाथ॥
ऊँचो जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर॥
ह्वै अधीन चातक नहीं, शीश नाय नहीं लेय।
ऐसे मानी माँगनहिं, को वारिद बिन देय?॥

जिनको परमात्मा ने देने लायक़ बनाया है, उन्हें दिल खोल कर ग़रीब और मुहताजों को देना चाहिये। जो देते हैं फिर पाते हैं; जो देते हैं उन्हींका जीवन सफल है। रहीम कवि कहते हैं—

दीनहि सबको लखत है, दीन लखे नहिं कोय।
जो "रहीम" दीनहिं लखत, दीनबन्धु सम सोय ॥
"रहिमन" वे नर मुरचुके, जे कहुँ माँगन नाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥
तबही लग जीबो भलो, दीबो परे न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमें न रुचे "रहीम" ॥

दोहा

गंगातट गिरिवर गुफा, जहाँ कहा नहिं ठौर।
क्यों एते अपमान सों, खात पराए कौर ॥७०॥

70. Have the grounds in the Himalaya mountains the stones of which are washed by the cold spray arising from water of the river Ganges and which are the favourite resort of Vidyadharas been destroyed, that men like to depend upon other people's charity, even when it is disrespectfully given ?

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनिलयाः ॥
धरां गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता
शरीरे का वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥ ७१ ॥

जब प्रलयकालकी अग्निके मारे श्रीमान् सुमेरु पर्वत गिर पड़ता है; मगर-मच्छोंके रहने के स्थान समुद्र भी सूख जाते हैं; पर्वतों के पैरोंसे दबी हुई पृथ्वी भी नाश हो जाती है; तब हाथी के कान की कोर के समान चञ्चल मनुष्य की क्या गिन्ती? ॥७१॥

जब काल सुमेरु जैसे पर्वतों को जला कर गिरा देता है, महासागरों को सुखा देता है, पृथ्वी को नाश कर देता है, तब इस छोटेसे चञ्चल मनुष्य को क्या गिन्ती? इसके नाश होने में कौनसा आश्चर्य्य?

दोहा।

मेरु गिरत सूखत जलधि, धरनि प्रलै ह्वै जात।
गजसुत के सुति चपल त्यौं, कहा देह की बात ॥७१॥

71. When even the great Meru collapses, burnt away by the Mahapralaya fire,* when even the oceans which are the home of huge crocodiles and sharks are at last dried up and when the Earth itself is destroyed although it is held fast by the feet of great mountains, what should we say of the human body which is as shaky as the tip of the ear of an infant elephant?

*The fire at the time of universal destruction.

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ॥
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ ७२ ॥

हे शिव ! मैं कब अकेला, इच्छा-रहित और शान्त हूँगा ? कब हाथ ही मेरा पात्र होगा और कब दिशाये' मेरे वस्त्र होंगे ? मैं कब कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ हूँगा ? ॥७२॥

एकान्त वास करना, इच्छाओं को त्याग देना, शान्त रहना, हाथ से ही पानी वगैर: पीने के बर्तन का काम लेना, दिशाओं को ही वस्त्र समझना; यानी नग्न रहना और कर्मों को जड़ उखाड़ने में समर्थ होना—ये ही कल्याण के मार्ग हैं। जिनमें ये गुण हैं वे धन्य हैं, और वेही सच्चे सुखी हैं।

दोहा

एकाकी इच्छारहित, पाणिपात्र दिगवस्त्र ।
शिव शिव ! हौं कब होऊँगो, कर्मशत्रु को शस्त्र॥७२॥

72. O Shiva, when shall I be alone, desireless, peaceful, with hands only to be used as receptacles for water etc., with space only in place of garments and fit for exterminating the roots of Karma (actions) ?

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
संमानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किम्
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥ ७३ ॥
जीर्णा कंथा ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं
एका भार्या ततः किंहयकरिसुगणैरावृतो वा ततःकिम्॥
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथ वा वासरांते ततः किं
व्यक्त ज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम्॥७४॥

अगर मनुष्यों को सब इच्छाओं के पूर्ण करनेवाली लक्ष्मी मिली तो क्या हुआ? अगर शत्रुओंको पदानत किया तो क्या? अगर धनसे मित्रों की ख़ातिर की तो क्या? अगर इसी देह से इस जगत् में एक कल्प तक भी रहे तो क्या? ॥७३॥

अगर चिथड़ोंकी बनी हुई गुदड़ी पहनी तो क्या? अगर निर्मल सफ़ेद वस्त्र पहने या पीताम्बर पहने तो क्या? अगर एक ही स्त्री रही तो क्या? अगर अनेक हाथी घोड़ों सहित अनेकों स्त्रियाँ रहीं तो क्या? अगर नाना प्रकारके व्यञ्जन भोजन किये अथवा शामको मामूली खाना खाया तो क्या? चाहे जितना विभव पाया, पर यदि संसार-बन्धन से मुक्त करने वाली आत्मज्ञानकी ज्योति न जानी, तो कुछ भी न पाया और कुछ भी न किया ॥ ७४ ॥

मतलब यह है, सारे संसारके राज्य-वैभव अथवा त्रिभुवन के अधिपति होनेमें भी जो आनन्द नहीं है, वह आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानमें है। आत्मज्ञान होनेसे ही मनुष्य जीवन-मरण के कष्टसे छुटकारा पाकर परम शान्ति लाभ करता है।

अर्ब खर्ब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज।
जो तुलसी निज मरन है, तौ आवे केहि काज॥

दोहा।

इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के साल।
कल्प जिए तौऊ गये, अन्त काल के गाल ॥७४॥

73. If wealth, which fulfils all men's desires, is obtained, what then? If the heads of enemies are trodden under foot, what then? If respect is shown by friendly men of power, what then? If a man lives in this world with this very body for the duration of a whole Kalpa*, what then?

74. What matters it if a man wears a worn-out sheet of cloth made of differently coloured rags or bright and clean clothes or fine silken garments? What matters it if he possesses a wife only or is surrounded by

* A day of **Bhrahma** (the creator) being 4320000000 solar years of mortals.

large numbers of elephants and horses? What matters it if sumptuous feasts are enjoyed or poor food only is eaten once in the evening? What matters it if one enjoys all sorts of eminence, if he has not seen within himself the eternal Light of self-realisation which destroys the fear of recurring births and deaths?

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ॥
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता
वैराग्यमस्ति किमतः परमार्थनीयम् ॥ ७५ ॥

अगर हम में नीचे लिखे हुए गुण हों, तब और कौनसा वैराग्य ईश्वर से माँगें ?—सदा शिवकी भक्ति हो, दिलमें जन्म-मरणका भय हो, कुटुम्बियों में स्नेह न हो, मन से काम-विचार दूर हों और संसर्ग-दोष से रहित होकर जङ्गलमें रहते हों ॥ ७५ ॥

परमात्मामें प्रेम होना, मनमें जन्म-मरणका भय होना, रिश्तेदारों से प्रेम न होना, मनमें स्त्री की इच्छा का न उठना, एकान्तस्थान में अकेले वनमें निवास करना—ये ही तो वैराग्य के पूरे लक्षण हैं। इनसे अधिक वैराग्यके और लक्षण नहीं।

दोहा ।

मन विरक्त हरभक्ति युत, संगी वन तृणडाभ ।
याहूतें कछु और है, परम अर्थ कौ लाभ ॥७५॥

75. What greater renunciation should we wish for, if we have the following virtues? Love of God, the fear of birth and death in our mind, no attachment with our relatives, no disturbance of Cupid's doing and residence in the lonely forest, free from the evils of society.

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि
तद् ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ॥
यस्यानुषंगिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥ ७६ ॥

इसवास्ते मनुष्यो! अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शान्तिपूर्ण ब्रह्मका ध्यान करो। मिथ्या जंजालोंमें क्या रक्खा है? जो ब्रह्मका ज़रासा भी आनन्द पाजाते हैं, उनकी नज़रोंमें संसारी राजाओं का आनन्द तुच्छ जँचता है ॥ ७६ ॥

मतलब यह है, कि लोगोंको अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शोक-रहित, शान्तिपूर्ण ब्रह्मका ध्यान करना

चाहिये। उसीके ध्यानमें पूर्णानन्द है, संसार के भोग-विलासोंमें ज़रा भी आनन्द नहीं है। वह आनन्द सदा है, यह आनन्द क्षणिक है; उसमें सदा सुख है, इसमें सदा दुःख है। जिनको ब्रह्मानन्द का ज़रासा भी मज़ा आजाता है, वे त्रिलोकी के अधिपतिके आनन्द को भी तुच्छ समझते हैं। राज, धन-दौलत, स्त्री-पुत्र प्रभृति सब उस परब्रह्मके पीछे हैं, इसलिये इनको छोड़ कर उस से ही प्रीति करने में चतुराई है।

दोहा

ब्रह्म अखण्डानन्द पद, सुमिरत क्यों न निशंक।

जाके छिन संसर्ग सों, लगत लोकपति रंक ॥७६॥

76. Therefore O men, meditate upon *Brahma*, the Endless, the Indestructible and the Blissfull. What is the use of other false considerations ? In the eyes of men who think of this *Brahma* the enjoyments obtainable by the worldly monarchs appear only to be but very poor acquisitions.

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य

दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन ॥

भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीतं

तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥ ७७ ॥

हे चित्त ! तू अपनी चञ्चलता के कारण पातालमें प्रवेश करता है, आकाश से भी परे जाता है, दशों दिशाओं में घूमता है, पर भूलसे भी तू उस विमल परब्रह्म की याद नहीं करता, जो तेरे हृदयमें ही मौजूद है, जिसके याद करनेसे ही तुझे परमानन्द—मोक्ष—मिल सकती है ? ॥ ७७ ॥

इस चञ्चल मन की अद्भुत लीला है। यह कभी आकाशमें जाता है, कभी पातालमें जाता है, कभी दशों-दिशाओं में फिरता है। इधर उधर तो इतना भटकता है, पर भूलकर भी जहाँ जाना चाहिये वहाँ नहीं जाता। उसके पास ही अमृतका सरोवर है, उसे छोड़ कर सड़ी-गली नालियोंमें फिरता है। उसे सब जगह छोड़कर अपने हृदयमें ही बैठे हुए ब्रह्मके पास जाना चाहिये। हर समय उसी की चिन्तना करनी चाहिये; इस से उस के पापोंका नाश हो जायगा, आवागमन से छुटकारा मिल जायगा, परमशान्ति की प्राप्ति होगी। और चिन्ताओं से कोई लाभ नहीं; उन से तो जञ्जाल में ही फँसना होता है।

मूर्ख लोग अव्वल तो परमात्मामें दिल ही नहीं लगाते। यदि भूल से लगाते भी हैं, तो परमात्मा की खोजमें जहाँ तहाँ मारे-मारे फिरते हैं; पर अपने हृदयमें ही उसे नहीं खोजते. यह उनका महा अज्ञान है।

उस्ताद ज़ौक़ ने कहा है—

वह पहलू में बैठे हैं और बदगुमानी।
लिये फिरती मुझको, कहीं का कहीं है॥

वह (ईश्वर) बग़ल में ही बैठा है, पर मैं भ्रम में फँस कर उसे ढूँढ़ने के लिये कहाँ-कहाँ मारा फिरता हूँ!

कबीर कहते हैं—

ज्यों नयनन में पूतली, त्यों ख़ालिक घट माँहि।
मूरख नर जाने नहीं, बाहर ढूँढन जाहि॥
कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसे घट घट ब्रह्म है, दुनियाँ जाने नाँहि॥
समझा तो घर में रहै, परदा पलक लगाय।
तेरा साहिब तुज्झहि में, अन्त कहूँ मत जाय॥

कोउक जात प्रयाग बनारस।
कोउ गया जगन्नाथहि धावै॥
को मथुरा बदरी हरिद्वार सु।
कोउ गंगा कुरुक्षेत्र नहावै॥
कोउक पुष्कर व्है पँचतीरथ।
दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवै॥
सुन्दर वित्त गड्यो घरमांहि सु।
बाहिर ढूँढ़त क्यूँ करि पावै॥

सारांश यह है, कि संसार अज्ञानान्धकार के कारण "छोरा बग़लमें ढंढोरा शहर में" वाली कहावत चरितार्थ करता है !

कुण्डलिया ।

फाँद्यौ तैं आकाश कों, पैठ्यौ तैं पाताल ।
दशों दिशा में तू फिर्‌यो, ऐसी चंचल चाल ।
ऐसी चंचल चाल, इतै कबहूँ नहिं आयौ ।
बुद्धि सदन को पाय, पाय छिनहू न छुवायौ ।
देख्यौ नहिं निजरूप, कूप अमृत को छाँद्यौ ।
एरे मन ! मतिमूढ़, क्यों न भव वारिधि फाँद्यौ॥७७॥

77. O mind, thou enterest into the lower world, soarest even higher than the heavens and wanderest all through the infinite space, never through mistake dost thou think of the Pure *Brahma*, who rests within thy own self and who will bring thee salvation from all sins !

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा बुधा जन्तवो
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥
व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवं विधेनामुना
संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥७८॥

प्राणियोंमें बुद्धिमान यद्यपि जानते हैं, कि दिन और रात ठीक पहले की तरह ही होते हैं ; तो भी वे उन्हीं कामधन्धों के पीछे दौड़ते हैं, जिनके पीछे वे पहले दौड़ते थे। वे लोग उन्हीं-उन्हीं कामों में लगे रहते हैं, जिनसे क्षणिक और बारम्बार वही लाभ होते हैं, जिनको वे बारम्बार कह और भोग चुके हैं। आश्चर्यका विषय है, कि मनुष्यों को लज्जा नहीं आती ! ॥ ७८ ॥

देखते हैं, कि पहले की तरह ही दिन, रात, तिथि, वार नक्षत्र और मास तथा वर्ष आते हैं और जाते हैं, उसी तरह हम खाते पीते सोते-जागते और काम-धन्धे करते हैं, कोई नई बात नहीं देखते। जिन कामों को पहले करते थे, उन्हीं को बारम्बार करते हैं। उन में कितना सा लाभ और सुख है, इसे भी देखते-सुनते और समझते हैं। फिर भी आश्चर्य है, कि हम इस मिथ्या संसार से मोह नहीं तोड़ते !

कुण्डलिया।

वेही निशि वेही दिवस, वेही तिथि वेही वार ।
वे उद्यम वेही क्रिया, वेही विषय विकार ।
वेही विषय विकार, सुनत देखत अरु सूँघत ।
वेही भोजन भोग, जागि सोवत अरु ऊँघत ।

महा निलज यह जीव, भोग में भयो विदेही ।
अजँहू पलटत नाहिं,कढ़त गुण वे के वेही ॥७८॥

78. Even the wise among human beings, although knowing that the days and nights now present are exactly similar to those that have passed away, run busily after the same business transactions which they had engaged themselves before. It is a wonder why we are not ashamed of sticking to the same worldly enterprises, availing of petty advantages as have been already spoken and reaped the benefit by us over and over again!

महीं रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ॥
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥ ७८ ॥

मुनि लोग राजा महाराजाओंकी तरह सुखसे ज़मीन कोही अपनी सुखदायिनी शय्या मान कर सोते हैं। उनकी भुजा ही उनका गुदगुदा तकिया है, आकाश ही उनकी चादर है, अनुकूल हवा ही उनका पंखा है, चन्द्रमा ही उनका चिराग़ है, विरति ही उनकी स्त्री है; अर्थात् वि-

रक्ति रूपी स्त्री को लेकर वे, उपरोक्त सामानों के साथ, राजाओं की तरह सुख से आराम करते हैं ॥ ७८ ॥

मुनि लोगों के पास न राजाओंकी तरह महल हैं, न बढ़िया-बढ़िया पलँग और मख़मली गद्दे तकिये हैं, न ओढ़नेके लिए शाल-दुशाले हैं, न बिजली के पंखे हैं, न झाड़ फानूस या बिजली की रोशनी है और न मृगनयनी मोहिनी कामिनीहीहैं,तोभी वे ज़मीनकोही अपना पलँग, हाथकोही तकिया,शीतल हवाकोही पंखा,चन्द्रमाकोही दीपक और संसारी विषय-भोगोंसे विरक्तिकोही अपनी स्त्री मानकर सुख से सोते हैं। राजा महाराजा और अमीर-उमरा बढ़िया-बढ़िया पलँग, कन्दहारी क़ालीन, मख़-मली गद्दे तकियों,बिजलीके पङ्खे और रोशनी और सुन्द-री स्त्रियोंके साथ जो मिथ्या सुख उपभोग करते हैं,उससे लाख दर्जे उत्तम और सच्चा सुख मुनिलोग ज़मीन औरअप-नी भुजा,अनुकूल हवा,चन्द्रमा तथा विरक्तिरूपिणी स्त्रीके साथ उपभोग करते हैं। अब बुद्धिमानों को विचार करना चाहिए, कि उन दोनोंमें बुद्धिमान कौन है और वास्त-विक सुख किसे मिलता है ? अमीरों को सुखके लिए कितने झञ्झट करने पड़ते हैं, कितनी आफ़तें उठानी पड़ती हैं; तथापि उन्हें सच्चा सुख नहीं मिलता और मुनि लोग बिना झंझट, बिना आफ़त और बिना प्रयास के सच्चा सुख भोगते और शान्ति की नींद सोते हैं।

छप्पय ।

पृथ्वी परम पुनीत, पलँग ताको मन मान्यौ ।
तकिया अपनो हाथ, गगनको तम्बू तान्यो ।
सोहत चन्द चिराक़, बीजना करत दशोंदिशि ।
बनिता अपनी वृत्ति, संगही रहत दिवस निशि ।
अतुलित अपार सम्पति सहित, सोहत है सुखमें मगन
मुनिराज महानृपराज ज्यों, पौढे देखे हम हगन ॥७६॥

79. A Sage sleeps in comfort and peace like a great king on the most comfortable sofa of the earth, with the soft pillow made of his own arm under his head with the open sky above as his bed-cover, the congenial breeze serving him as a fan, the moon giving him the light of a lamp, enjoying the conjugal association of non-attachment with pleasures of life.

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ॥
भोगः कोपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते
यत्स्वादाद्विरसा भवंति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ८०॥

हे आत्मा! अगर तुझे उस ब्रह्मका ज्ञान होगया

है, जिसके सामने तीन लोकका राज्य तुच्छ मालूम होता है ; तो तू भोजन, वस्त्र और मान के लिए भोगों की चाहना मत कर। क्योंकि वह भोग सर्वश्रेष्ठ, और नित्य है, उसके मुक़ाबले में त्रिलोकी के राज्य प्रभृति सुख कुछ भी नहीं हैं ॥ ८० ॥

जब तक मनुष्यको ब्रह्मज्ञान नहीं होता, जबतक उसे आत्मज्ञान नहीं होता, जब तक उसे उस सुखका स्वाद नहीं मिलता, तभी तक मनुष्य संसारी विषय-भोगों में सुख समझता है। जब मनुष्य को उस सर्व्वोत्तम—सदा स्थिर रहनेवाले सुखका स्वाद मिल जाता है, तब वह दुनियवी मज़े तो क्या—त्रिभुवनके राज्यसुख को भी कोई चीज़ नहीं समझता। मतलब यह है कि, सच्चा और वास्तविक सुख ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान में है। उसके बराबर आनन्द त्रिलोकीके और किसी भी पदार्थ में नहीं है। जो संसारी पदार्थोंमें सुख मानते हैं, वे अज्ञानी और नासमझ हैं। उनमें अच्छे और बुरे, असल और नक़ल को पहचानने की तमीज़ नहीं। वे रस्सीको साँप और मृगमरीचिकाको जल समझनेवालोंकी तरह बहँके हुए हैं।

सोरठा।

कहा विषय को भोग, परम भोग इक और है।
जाके होत संयोग, नीरस लागत इन्द्रपद ॥८०॥

80. If you have realised the Great One in whose presence the kingdom of the three worlds appears to give no pleasure, you should not cherish any longing for the acquirement of enjoyments such as those of good seats, clothes and honour. There is an Enjoyment somewhere, Great and Eternal, by tasting which all pleasures like that of the kingdom of the three worlds become tasteless or lose fascination.

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥
मुक्त्वैकं भवबंधदुःखरचनाविध्वंसकालानलं
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ ८१ ॥

वेद, स्मृति, पुराण, और बड़े-बड़े शास्त्रोंके पढ़ने तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्मकाण्ड करने से स्वर्गमें एक कुटिया की जगह प्राप्त करनेके सिवा और क्या लाभ है ? ब्रह्मानन्दरूपी गढ़ीमें प्रवेश करनेकी चेष्टा के सिवा, जो संसारी बन्धनोंके काटनेमें प्रलयाग्निके समान है, और सब काम व्यापारियोंके से काम हैं ॥ ८१ ॥

वेद, स्मृति, पुराण और बड़े-बड़े शास्त्रों के पढ़ने-सुनने और उनके अनुसार कर्म करने से मनुष्य को कोई बड़ा लाभ नहीं है। अगर ये कर्मकाण्ड ठीक तरह से

पार पड़ जाते हैं, तो इनसे इतनाही होता है, कि स्वर्गमें एक कुटीके लायक स्थान मिल जाता है ; पर वह स्थान सदा कब्ज़े में नहीं रहता ; जिस दिन पुण्यकर्मों का ओर आजाता है, उस दिन वह स्वर्गीय स्थान फिर छिन जाता है ; इससे प्राणीको फिर दुःख होता है। मतलब यह हुआ, कि कर्मकाण्डोंसे जो सुख मिलता है, वह सुख नित्य या सदा-सर्वदा रहनेवाला नहीं ; उस सुखके अन्तमें फिर दुःख होता है—फिर स्वर्ग छोड़ कर मृत्युलोकमें जन्म लेना पड़ता है—वही जन्म-मरणके दुःख झेलने पड़ते हैं। इसलिए मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानी होने की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि ब्रह्मज्ञान रूपी अग्नि प्रलय की अग्निके समान है। वह अग्नि संसार-बन्धनोंको जड़से जला देती है ; अतः फिर सदा सुख रहता है—दुःखका नाम भी सुनने को नहीं मिलता। इस लिए ज्ञानियों ने ब्रह्मज्ञान—आत्मज्ञान को सर्वोपरि सुख दिलानेवाला माना है। मतलब यह है, कि बिना ब्रह्मज्ञान या रामभक्तिके सब जप तप आदि वृथा हैं।

चतुराई चूल्हे परै, यम गहि ज्ञानहि खाय।
तुलसी प्रेम न रामपद, सब जरमूल नशाय ॥

ये नरोधम लोकेषु, रामभक्ति पराङ्मुखा।
जपं तपं दयाशौचं, शास्त्राणां अवगाहनम् ॥
सर्वं वृथा बिना येन, शृणुत्वं पार्वति प्रिये ॥

छप्पय ।

श्रुति अरु स्मृति, पुरान पढ़े विस्तार सहित जिन ।
साधे सब शुभकर्म, स्वर्गको वास लह्यो तिन ।
करत तहाँ हूँ चाल, काल को ख्याल भयंकर ।
ब्रह्मा और सुरेश, सबनको जन्ममरण डर ।
ये वणिकवृत्ति देखी सकल, अन्त नहीं कछु कामकी ।
अद्वैत ब्रह्मको ज्ञान, यह एक ठौर आरामकी ॥८१॥

81. What is the use of reading the Vedas, the Smritis, the Purans and the voluminous Shastras or of practising the various Karamkanda actions which are fruitful only in procuring an abode in a cottage in Swarga? All other pursuits are mercenary, save that of trying to enter the citadel of self-realisation which is like the Pralaya fire in putting an end to the misery of the bondages of this world.

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवन श्री-
रर्थाः संकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः ॥
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ८२

आयु—उम्र—पानी की लहरों के समान चञ्चल है; जवानी थोड़े दिनोंकी है, धन मन के संकल्पोंसे भी कम देर ठहरनेवाला है, भोग वर्षाकाल में चमकनेवाली बिजलीकी चमकसे भी अधिक चञ्चल हैं, प्यारी स्त्रीका गलेसे लगाना भी चिरस्थायी नहीं है। इसलिए मनुष्यो! भवसागरसे पार होनेके लिए ब्रह्म में लीन होओ ॥ ८२ ॥

उम्र का कोई ठिकाना नहीं। यह पानी की तरंगों के समान चञ्चल और पानीके बुलबुले की तरह क्षण-स्थायी है। इसका कोई भरोसा नहीं। अभी है, एक क्षण बाद न रहे। एक साँस के बाद दूसरे साँसके आनेका भी भरोसा नहीं। इसवास्ते इस पर भूलना ठीक नहीं। मृत्यु हर समय उम्रका नाश करनेके लिए प्राणीके सिर पर चक्कर लगाया करती है। कौन जाने, वह कब शिकारको लपक ले?

जवानी का भी कोई ठिकाना नहीं। वह भी चन्दरोज़ा है। 'चार दिनाकी चाँदनी, फेर अँधेरी रात' वाली बात है। किसीने कहा है:—

रहती है कब, बहारे जवानी तमाम उम्र।
मानिन्द बूये गुल, ईधर आई उधर गई॥

यौवन अवस्थाकी बहार उम्रभर थोड़ेही रहती है। वह तो सुमन सौरभकी तरह इधर आई उधर गई।

धनपर भी मनुष्योंको न भूलना चाहिए। लक्ष्मी स्वभाव से ही चञ्चला है। इसीलिए इसे मनके विचारोंकी तरह क्षणिक और वेजड़ कहा है। आज जिसे धनी देखते हैं, कल उसे निर्धन देखते हैं। आज जो हज़ारोंको भोजन देता है, कल वही अपने भोजनके लिए औरोंके द्वार पर घूमता है। आज जो राजा बना फिरता है, कल वही रंक देखा जाता है। आज जो बिना मोटर और घोड़े के एक क़दम नहीं चलता, कल वही पैदल दौड़ा फिरता है। आज जिसकी आज्ञा पालन करनेके लिए हज़ारों दास-दासी खड़े रहते हैं, कल वही दूसरोंकी आज्ञा पालन करनेके लिए खड़ा देखा जाता है। मूर्ख हैं वे, जो इस झूठे और सदा न रहनेवाले धन पर फूलते हैं और समझते हैं, कि यह सदा हमारे पास रहेगा। भोग या विषय-सुखोंका भी यही हाल है। ये धनसे मिलते हैं; जब धनका ही यह हाल है, तब इनका क्या कहना? सचमुचही ये वर्षाकाल की बिजली की चमकके समान हैं।

प्राणप्यारी मोहिनी कामिनी का गले लगाना भी सदा रहनेवाला नहीं। संयोगके साथ वियोग लगा हुआ है। आज जो कामिनियोंके साथ आनन्द करते हैं, कल वे ही अकेले तड़पते देखे जाते हैं। संसारके जितने पदार्थ हैं, सभी क्षणभंगुर और परिणाममें दुःखोंके भाण्डार

दुनिया एक ऐसा जाल है, जिसमें प्रायः सभी फँसे हुए हैं। कोई दाना अर्थात् विचारशील पुरुष ही इस जालसे बचा हुआ है।

संसार अन्तःसारशून्य है, इसमें कुछ नहीं है। यह ठीक आँवले के समान है, जो ऊपर से खूब सुन्दर और चिकना-चुपड़ा दीखता है; मगर भीतर कुछ नहीं। किसीने इसे स्वप्नवत् और किसीने इसे कोरा ख़याल ही कहा है। महाकवि ग़ालिब कहते हैं :—

हस्ती के मत फरेब में आजाइयो असद।

आलम तमाम हलक़ ये दामे ख़याल है॥

सृष्टि के चक्रमें ग़ालिब मत आजाना, यह सब प्रपञ्च तुम्हारे ख़याल के सिवा कोई चीज़ नहीं है।

इसके जाल में समझदार नहीं फँसते; किन्तु नासमझ लोग, जालके किनारों पर लगी सीपियों की चमक-दमक देख कर जालमें आ फँसनेवाली मछलियों की तरह, इस के माया-मोह में फँस कर अनेक प्रकारके कष्ट उठाते हैं; किन्तु ज्ञानी इसकी अनित्यता, इसकी असारता को देख कर इस से किनारा कर लेते हैं।

दोहा।

ज्यौं सफरी कों फिरत लख, सागर करत न क्षोभ।

अण्डा से ब्रह्माण्ड को, त्यों सन्तन कों लोभ॥८०॥

83. What value has the whole world in the eyes of a man wise in the knowledge of self that he may be tempted by it ? The great Ocean is never disturbed by the jumping of a fish i

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ॥
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥ ८४ ॥

जब तक हममें कामदेव से पैदा हुआ अज्ञान-अन्धकार था, तब तक हमें सारा जगत् स्त्रीरूप ही दीखता था। अब हमने विवेकरूपी अञ्जन आँज लिया है, इस से हमारी दृष्टि समान होगई है। अब हमें तीनों भुवन ब्रह्मरूप दिखाई देते हैं।

जब हम काममद से अन्धे हो रहे थे,जब हमें अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं था, तब हमें स्त्री-ही-स्त्री दिखाई देती थी, बिना स्त्री हमें क्षण भरभी कल नहीं थी; किन्तु अब हम में विवेक-बुद्धि आगई है। अब हम अच्छे बुरे को समझने लगे हैं, इसलिए अब हमें सारा संसार यकसाँ मालूम होता है। अब हमें कहीं स्त्री नहीं दीखती, सभी तो एकसे दीखते हैं। जहाँ नज़र दौड़ाते हैं, वहीं ब्रह्म ही ब्रह्म नज़र आता है। मतलब यह, कि न कोई स्त्री है न कोई

पुरुष, सभी तो एकही हैं; केवल चोलेका भेद है। आत्मा न स्त्री है न पुरुष। वह सबमें समान है। मगर अज्ञानियों को यह बात नहीं दीखती। उन्हें औरका और दीखता है।

दोहा।

काम अन्ध जबही भयौ, तिय देखी सब ठौर।

अब विवेक अंजन किये, लख्यौ अलख सिरमौर ॥८१॥

84. As long as we were in the darkness of ignorance produced by lustful passions, the whole universe seemed to us as if transformed into the shape of women. Now that we have applied to our eyes the collyrium of discrimination between right and wrong, our sight has become calm and the three Bhuvanas (regions) appear to us to be the manifestation of *Brahma*.

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली
रम्य: साधुसमागम: शमसुखं काव्येषु रम्या: कथा: ॥
कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुन: ॥८५॥

चन्द्रमाकी किरणें, हरी हरी घासके तख्ते, मित्रोंका समागम, शृङ्गार रसकी कवितायें, क्रोधाश्रुओंसे चंचल प्यारी का मुख,—पहले ये सब हमारे मनको

मोहित करते थे, किन्तु जबसे संसारकी अनित्यता हमारी समझमें आई, तबसे हमें वे सब अच्छे नहीं लगते ॥८५॥

जब तक मनुष्यको संसारकी असारता, उसकी अनित्यता, उसका थोथापन, उसकी पोल नहीं मालूम होती, तभी तक मनुष्य संसार और संसारके झगड़ोंमें फँसा रहता है, विषय-भोगोंको अच्छा समझता है; किन्तु संसारकी असलियत मालूम होते ही उसे विषय-सुखों से घृणा हो जाती है। उस समय न उसे चन्द्रमाकी शीतल चाँदनी प्यारी लगती है, न मित्रमण्डली अच्छी मालूम होती है, न उसे शृंगार रसकी कवितायें अच्छी मालूम होती हैं और न उसका चित्त चन्द्रवदनी कामिनियों को ही देखकर मचलता है।

छप्पय।

चन्द चाँदनी रम्य, रम्य बनभूमि पहुपयुत।
योंहों अति रमणीक, मित्त मिलबो है अद्भुत।
बनिताके मृदु बोल, महारमणीक बिराजत।
मानिनमुख रमणीक, दृगन असुअन झर साजत।
ए कहे परमरमणीक सब, सब कोऊ चित्तमें चहत।
इनकों बिनास जब देखिय, तब इनमें कछुहु न रहत ८२

85. The rays of the moon, the forest

glades covered with green grass, the society of friends, the works of literature possessing beauties of composition, the faces of the beloved ones made resplendent by the drops of tears caused by anger, all captivated our heart at first. But since we have realised the destructibility of the world, all these things have lost their attractiveness and our mind is now absolutely vacant.

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहित: स्वायत्तचेष्ट: सदा ॥
दानादानविरक्तमार्गनिरत: कश्चित्तपस्वी स्थित: ॥
रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनै: संप्राप्तकन्थासखि-
र्निर्मानो निरहंकृति: शमसुखाभोगैकबद्धस्पृह: ॥ ८६ ॥

ऐसा तपस्वी कोई विरला ही होता है, जो भीख माँगकर खाता है, जो अपने लोगोंमें रहकर भी उनमें मोह नहीं रखता, जो स्वाधीनतापूर्व्वक अपना जीवन निर्व्वाह करता है, जिसने लेने और देनेका व्यवहार छोड़ दिया है, जो राहमें पड़े हुए चिथड़ों की गुदड़ी ओढ़ता है, जिसे मानका ख़याल नहीं है, जिसमें अभिमान नहीं है, और जो ब्रह्मज्ञानके सुखको ही सुख मानता है।

ज्ञानीके लक्षण सुन्दरदासजी ने इस भाँति कहे हैं—

कर्म न विकर्म करै, भाव न अभाव धरै।
शुभ न अशुभ परै, यातैं निधरक है ॥

वस तीन शून्य जाके, पापहु न पुण्य ताके ।
अधिक न न्यून वाके, स्वर्ग न नरक है ॥
सुख दुःख समदोउ, नीचहु न ऊंच कोउ ।
ऐसो विधि रहै सोउ, मिल्यो न फरक है ॥
एकहो न दोय जानै, बंध मोच भ्रम मानै ।
सुन्दर कहत, ज्ञानी ज्ञानमें गरक है ॥

सोरठा ।

उच्छवृति गति मान, समदृष्टी इच्छारहित ।
करत तपस्वी ध्यान, कन्थाको आसन कियें ॥८६॥

86. Very rarely is a Tapasevi met with who procures his food by begging, who is free from all attachments in the midst of his fellow-men, who leads a life of freedom who has given up all the transactions of giving and taking, who is content with wearing a sheet made of old, worn out and torn rags of cloth found by the roadside, who has no desire for honour, who is free from vanity and who only takes pleasure in the enjoyment of happiness produced by self-denial.

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबंधो जल
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामेष प्रणामाञ्जलिः ॥

युग्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि ॥८७॥

हे माता पृथिवी ! पिता वायु ! मित्र तेज ! बन्धु जल ! भाई आकाश ! अब मैं आप सबको अन्तिम विदाई का प्रणाम करता हूँ। आपकी संगतिसे मैंने पुण्यकर्म्म किये, पुण्योंके फल स्वरुप मुझे आत्मज्ञान हुआ, जिसने मेरे संसारी मोहका नाश कर दिया अब मैं परमब्रह्म में लीन होता हूँ ॥८७॥

मनुष्य-शरीर पृथ्वी, वायु, तेज, जल और आकाश—पाँच तत्त्वोंसे बनता है। वह मनुष्य जिसे आत्मज्ञान हो गया है, जिसने ब्रह्मको पहचान लिया है, वह पाँचों तत्त्वोंसे विदा लेता है और प्रणाम करके कहता है, कि मैं आप पाँचों के सङ्ग रहनेसे—यह शरीर धारण करने से—इस योग्य हुआ, कि ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सका। अब मेरा आपका साथ न होगा, अब मैं चोलेमें न आऊँगा, अब मुझे जन्म लेना न पड़ेगा, इसलिए मैं आप लोगोंका कृतज्ञ हूँ। आपकी सु-संगतिसेही मुझे यह फल मिला है। अब मैं आपसे सदा को विदा होता हूँ। अबमें ब्रह्मके आनन्दमें मग्न हूँ। अब मुझे यहाँ आनेकी, आप लोगोंकी संगति करनेकी यानी शरीर धारण करनेकी ज़रूरत नहीं। मतलब यह है, कि मनुष्यका चोला ब्रह्मज्ञानके लिये मिलता है; और चोलेमें यह ज्ञान हो नहीं सकता। जो इस मनुष्य-चोलेमें आकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते

हैं, परमपद या मोक्ष प्राप्त करते हैं, वेही धन्य हैं,—उन्हींका मनुष्य-देह पाना सार्थक है।

छप्पय।

अरी मेदिनी मात, तात मारुत सुन ऐरे।
तेज सखा जल भ्रात, व्योम बन्धु सुन मेरे।
तुमको करत प्रणाम, हाथ तुम आगे जोरत।
तुम्हरेही सत्संग, सुकृत को सिन्धु झकोरत।
अज्ञान जनित यह मोहहू, मिट्यो तिहारे संग सों।
आनन्द अखण्डानन्दको, छाय रह्यो रसरंग सों॥८७॥

87. O mother Earth, O father Air, O friend Light, O kinsman Water, O brother space, I bid you all my last farewell greeting! In company with you, as the composite parts of my physical body, I did the good deeds which bore the fruit of endowing me with pure self-consciousness which again distroyed all my earthly attachments. I now go to be absorbed in the Supreme Eternal.

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यात्क्षयो नायुषः॥

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा-
न्प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ ८८ ॥

जब तक शरीर ठीक हालतमें है, बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों की शक्ति बनी हुई है, आयुके दिन बाक़ी हैं, तभीतक बुद्धिमानको अपने कल्याणकी चेष्टा अच्छी तरहसे करलेनी चाहिये। घर जलने पर कुआ खोदनेसे क्या फ़ायदा? ॥८८॥

जबतक आपका शरीर निरोग और तन्दुरुस्त रहे, बुढ़ापा न आवें, आपकी इन्द्रियोंकी शक्ति ठीक बनी रहे, आपका अन्त दूर हो, उम्र बाक़ी होवे, तभी तक आप अपनी भलाईकी चेष्टा कर लीजिए; यानी ऐसी हालतमेंही भगवान् का भजन कर लीजिये। जब आप रोगोंसे जर्ज्जरित हो जायेंगे, कफ खाँसी और दम घेर लेंगे, आँखोंसे न दीखेगा, कानोंसे न सुनाई देगा, गलेमें घरघर कफ बोलने लगेगा, मौत अपना पञ्जा जमा देगी, तब आप क्या करेंगे? अर्थात् कुछ नहीं। उस समय यदि आप कुछ करनेकी चेष्टा करेंगे, तो आपकी दशा उसकीसी होगी, जो घरमें आग लगने पर कुआ खोदता है।

उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

> बेनिशाँ पहले फ़नासे हो, जो हो तुझको बक़ा।
> वर्ना है किसका निशाँ, ज़ौक़े फ़नाने रक्खा॥

मरनेसे पहले सांसारिक बन्धनों से अपने चित्त को

इट्टाले—अमर होनेकी यही एक तरकीब है ; वर्ना मौत किसीका निशान नहीं छोड़ती ।

छप्पय ।

जौं लों देह निरोग, और जौं लो न जरा तन ।
अरु जौं लों वलवान् आयु, अरु इन्द्रिन के गन ।
तौं लों निज कल्याण करन कों, यत्न विचारत ।
वह पण्डित वह धीर वीर, जो प्रथम सम्हारत ।
फिर होत कहा जर्जर भये, जप तप संयम नहिं वनत ।
भव काम उठ्यो निज भवन जब, तब क्योंकर कूपहि खनत ८८

88. As long as the body is in good health and old age is still far off, as long as the faculties of senses are strong and the end of life has not come, a wise man should try his best for his spiritual weal. When the house has caught fire, what is the use of attempting to dig a well ?

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः ॥
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चंद्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ८९ ॥

हमने इस जगत्में नम्रोंको सन्तुष्ट करनेवाली और

वादियोंका मान भञ्जन करनेवाली विद्या नहीं पढ़ी, तल-वारकी धारसे हाथीके मस्तकका पिछला भाग काटकर अपना यश स्वर्ग तक नहीं पहुँचाया, चाँदनी रातमें सुन्दरी के कोमल अधरपल्लव (निचले होठ) का रस भी नहीं पिया । हाय ! हमारी जवानी सूने घरमें जलनेवाले और आपही बुझ जाने वाले दीपक की तरह योंही गयी ! ॥८८॥

दोहा ।

विद्या पढ़ी न रिपु दले, रह्यो न नारि समीप ।
यौवन यह यौंही गयो, ज्यों सूने गृह दीप ॥८९॥

89. We did not attain in this world literary knowledge which pleases the meek and puts down the vanity of the crowds of critics. Nor did we extend our fame up to the gates of Swarga by cutting down the backs of elephants' heads with the edge of a sword. Nor did we drink in the moon-light the flowery juice of the soft lower lips of our beloved ones. Alas, that our youth has passed away uselessly like a burning lamp in an empty house, which spends itself away without being of any use to anybody.

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ॥
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये ॥
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥ ८० ॥

अच्छे मनुष्योंमें तो ज्ञान उनके मान-मद आदिका नाश करता है ; किन्तु दुष्टोंमें वही ज्ञान मान-मद प्रभृति औगुणोंकी वृद्धि करता है। एकान्त स्थान योगियोंके लिये तो मुक्ति दिलानेवाला होता है, किन्तु कामियोंकी कामज्वाला को बढ़ानेवाला होता है ॥८०॥

जिस तरह स्वाति बूँद सीपमें पड़नेसे मोती हो जाती है, किन्तु सर्पमुखमें पड़नेसे विषका रूप धारण करती है ; उसी तरह एक ही चीज़ पुरुष भेद से अलग-अलग गुण दिखाती है। ज्ञानसे अच्छे लोगोंका अभिमान नाश हो जाता है, वे सब किसीको अपने बराबर समझते हैं, सबके साथ सहानुभूति रखते हैं, किसीका दिल नहीं दुखाते ; किन्तु उसी ज्ञानसे दुष्ट लोगोंकी दुष्टता और भी बढ़ जाती है, वे अपने सामने जगत्को तुच्छ समझते हैं; विद्याभिमानके मारे किसी की ओर नज़र उठाकर भी नहीं देखते, अपने सिवा सबको पशु समझते हैं। एक ही ज्ञान दो स्थानोंमें स्थान-भेद से अपना अलग-अलग प्रभाव दिखाता है। जैसे ; एकान्त स्थान योगियोंके चित्तको ब्रह्म-

विचारमें लीन करता है और इस से उनको परमपद—मुक्ति—मिल जाती है ; किन्तु वही एकान्त स्थान कामियों के दिलोंमें मस्ती पैदा करता है ।

दोहा ।

ज्ञान घटावे मान मद, ज्ञानहि देय बढ़ाय ।
रहसि मुक्ति पावे यती, कामी रति लपटाय ॥९०॥

90. Knowledge serves the good men as a destroyer of their vanity and false pride. In some, it enhances the same evils. A lonely place is for the spiritual salvation of those who practise self-restraint, while it increases hundredfold the lust of sensual people.

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं
हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥
किं युक्तं सहसाभ्युपैति वलवान्कालः कृतांतोऽक्षमी
ह्याज्ञातं स्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वास्तिनान्यागतिः ९१

हमारी इच्छायें हमारे हृदयमें हो जीर्ण होगईं, जवानी भी चली गई, हमारे अच्छे-अच्छे गुण भी कद्रदानों के न होनेसे बेकार होगये, सर्व-शक्तिमान् सर्वनाशक काल (मृत्यु) शीघ्र शीघ्र हमारे पास आ रहा है ; इसलिये अब

हमारी समझमें कामारि शिवके चरणोंके सिवा और जगह हमारी रक्षा नहीं है ॥८१॥

मनुष्य दुःखित होकर कहता है,—हमारे मनकी मनमेंही रह गई, हमारे अर्मान न निकले, और जवानी कूँच कर गई, अब उसके आनेकी भी उम्मेद नहीं, क्योंकि जवानी किसी की लौटकर आती सुनी नहीं।

मनुष्यकी तृष्णा कभी नहीं बुझती, एक पर एक इच्छा उठा ही करती है। इच्छायें पूरी नहीं होतीं और मौत आ जाती है। महाकवि ग़ालिब भी पछता कर कहते हैं—

हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी, कि हर ख्वाहिश पै दम निकले।
बहुत निकले मेरे अर्मान, लेकिन फिर भी कम निकले॥

महाकवि दाग़ घबरा कर कहते हैं—

मरे हुए हैं हजारों अर्मां।
फिर उस पै है हसरतों की हसरत॥
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही।
मैं दिलकी वसअत से तंग होकर॥

मेरे मनमें हज़ारों वासनायें हैं, पर वासनाओं के पूर्ण न होनेका दुःख भी कुछ कम नहीं है। हे ईश्वर! मैं अपने मनकी विशालता से तंग होगया, अब मेरा

जो यही चाहता है, कि इस विराट दिल से तंग होकर कहीं चला जाऊँ।

इसी तरह महात्मा सुन्दरदासजी भी कहते हैं—

तीनहिं लोक अहार कियो सब।
सात समुद्र पियो पुनि पानी॥
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत।
काढ़त आँख डरावत मानो॥
दाँत दिखावत जीभ हलावत।
या हित मैं यह डाकिनि जानो॥
सुन्दर खात भये कितने दिन।
हे तृष्णा! अजहु न अघानी॥

इस तृष्णासे सभी समझदार अन्तमें दुखी हुए हैं और उन्होंने पछता-पछता कर ऐसी ही बातें कही हैं। इस तृष्णाके फेरमें मनुष्य का बुढ़ापा आजाता है, पर तृष्णा बूढ़ी नहीं होती, उसका ज़ोर और भी बढ़ जाता है। इसलिये मनुष्यको आशा तृष्णा त्याग कर, परमात्मामें लौ लगानी चाहिये। जो नहीं चेतते, उनका परिणाम बुरा होता है। जब एकादम से बुढ़ापा छा-जाता है, शरीर अशक्त हो जाता है, तब कुछ भी नहीं होता। मनुष्य पछता-पछताकर सबको छोड़ चला जाता है। कहा है—

ये मम देश विलायत हैं गज।
ये मम मन्दिर ये मम थाती॥
ये मम मात पिता पुनि बान्धव।
ये मम पूत सु ये मम नाती॥
ये मम कामिनि केलि करै नित।
ये मम सेवक हैं दिनराती॥
सुन्दर ऐसेहि छांड़ि गयो सब।
तेल जर्‌यो सु बुझी जब बाती॥

सारांश यह, कि जवानीमें ही स्त्री पुत्र प्रभृति सब का मोह छोड़कर, एकान्त में जा, परमात्माका भजन करना चाहिये; क्योंकि बुढ़ापे में कुछ नहीं होता। शेख़ सादीने कहा है और ठीक कहा है—

जवान गोशानशीं, शेर मर्दे राहे ख़ुदास्त।
कि पीर ख़ुद न तवानद, ज़े गोशये बरख़ास्त॥

जवानीमें जिन्होंने एकान्त में ईश्वर भजन किया है, सच्चे भक्त वेही हैं। बूढ़ा आदमी यदि एकान्तवास पर गर्व करे तो झूठा है, क्योंकि वह तो जहां पड़ा है वहांसे सरक ही नहीं सकता।

जो लोग सारी उम्र संसारी जंजालों में बिता देते हैं और परमात्मा का भजन नहीं करते, उनका नक़्शा स्वामी सुन्दरदासजी ने ख़ूब ही अच्छा खींचा है—

ग्रीव त्वचा कटि है लटकी ।
कचहु पलटे अजहुँ रतिकामी ॥
दन्त गये मुखके उखरे ।
नखरे न गये सुखरो खर कामी ॥
कम्पत देह सनेह सु दम्पति ।
सम्पति जंपत है निशि जामी ॥
सुन्दर अन्तहु भीन तज्यो ।
न भज्यो भगवन्त सु लीनहरामी ॥

छप्पय ।

मन के मनहीं माहिं, मनोरथ वृद्ध भये सब ।
निज अंगन में नाश भयो, वह योवयनहू अब ।
विद्या है गई बांझ, बूझवारे नहिं दीसत ।
दौर्‍यो आवत काल, कोपकर दशनन पीसत ।
कबहूँ नहिं पूजे प्रीति सों, चक्रपाणि प्रभु के चरण ।
भवबन्धन काटे कौन अब; अजहूँ गहुरे हरि शरण ॥९१

91. All our desires have been stifled within us. Our youth has been changed into old age. All our good qualities have resulted in fruitlessness through the absence of those who would appreciate them. The all-powerful Death, the destroyer of every-

thing, is fast approaching. Now we have realised that there is no shelter for us, save that of the feet of Shiva, the enemy of Cupid.

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सञ्शालीन्कवलयति शाकादिवलितान् ॥
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढ़तरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ८२ ॥

जब मनुष्यका कण्ठ प्यास से सूखने लगता है, तब वह शीतल जल पीता है ; जब उसे भूख लगती है, तब वह साग और कढ़ी प्रभृतिके साथ चाँवल खाता है ; जब उस की कामाग्नि तेज़ होती है, तब वह स्त्रीको ज़ोरसे गले लगाता है ; विचार कर देखने से मालूम होता है, कि ये सब एक-एक बीमारी की दवा हैं ; परन्तु लोग इन्हें भूल से सुखके सामान समझ कर इनमें सुख मानते हैं ! ॥८२॥

प्यास-रोगकी दवा शीतल जल है; यानी शीतल जलसे तृषा नाश होती है। क्षुधारोगकी दवा रोटी भात और साग दाल प्रभृति हैं ; यानी भात-दाल प्रभृतिसे भूख-रोग नाश होता है। कामाग्नि भी एक रोग है, उसके शान्त करनेका उपाय स्त्रीको छातीसे लगाना है ; यानी स्त्री को आलिङ्गन करने या चिपटानेसे काम की आग ठण्डी होजाती है। (दाह

ज्वरमें पोड़शी कामिनीके शरीरमें चन्दन लगाकर चिपटाने से दाह ज्वरमें वहुत लाभ होता है ।। इन वातों पर विचार करनेसे साफ मालूम होता है, कि शीतल जल पान, भिन्न भिन्न प्रकारके भोजन, स्त्रियोंका आलिङ्गन प्रभृति तृषा, क्षुधा, कामाग्नि प्रभृति रोगोंकी औषधियाँ हैं, इन को सुख समझना भूल नहीं तो क्या है ?

छप्पय ।

प्यास लगे जब पान करत, शीतल सुमिष्ट जल ।
भूख लगे तब खात, भात-घृत दूध और फल ।
बढ़त कामकी आगि, तबहिं नववधू संगराते ।
ऐसे करत विलास, होत विपरीत दैवगति ।
सब जीव जगतके दिन भरत, खात पियत भोगहु करत ।
ये महारोग तीनों प्रबल, बिना मिटाये नहिं मिटत ॥९२॥

9`. When men's throats are over-powered by thirst, they drink clear and delicious water. When they are stricken with hunger, they eat rice together with curry made of vegetables etc. When the consuming fire of lust is kindled, they embrace closely their wives Each of these actions is a remedy for a separate malady.

but people take delight in them mistaking them for pleasures !

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो
त्वां ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले ॥
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे
दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः ॥८३॥

हे शिव ! हे कामारि ! गंगामें स्नान करके, तुझपर पवित्र फल फूल चढ़ाता हुआ, तेरी पूजा करता हुआ, पर्वतकी गुफ़ामें शिला पर बैठा हुआ, अपनेही आत्मा में मग्न होता हुआ, वनफल खाता हुआ, गुरुकी आज्ञानुसार तेरेही चरणोंका ध्यान करता हुआ, कब मैं इन संसारी दुःखोंसे छुटकारा पाऊँगा ? ॥ ८३ ॥

दोहा ।

नर सेवा तजि वृह भजि, गुरुचरणन चित लाय ।
कब गंगातट ध्यान धर, पूजोंगो शिव पाय ? ॥८३॥

93. O Shiva, enemy of Cupid, when shall I be saved by Thy grace from the miseries of the world, bathing in the Ganges water, worshipping Thee with purified flowers and fruits, meditating on Thee as my idol, seated on a stone in a mountain cave, content with my own self, eating only wild

fruits, obeying the commands of my religious preceptor, devoted to Thy feet and resolved to sit in contemplation as the only path to salvation ?

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः
सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः॥
येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्येव विद्यांगना
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ८४॥

मैं उनको परमेश्वर समझता हूँ, जो किसीके सामने मस्तक नहीं नवाते, जो पर्वतकी शिलाको ही अपनी शय्या समझते हैं,जो गुफाकोही अपना घर मानते हैं, जो वृक्षोंकी छालों को ही अपने वस्त्र, जगली हिरनों को ही अपने मित्र समझते हैं, जो कुदरती झरनों का जल पीते हैं और जो विद्याको ही अपनी प्राणप्यारी स्त्री समझते हैं ॥८४॥

जो किसी चीज़ की चाह नहीं रखते, वे किसीकी परवा नहीं करते, वे किसी के सामने मस्तक नहीं नवाते ; जिनकी वासनाओं का अन्त नहीं होता, वे ही जने जनेके सामने सिर नवाते हैं। जो संसारके दास नहीं, वे सचमुच ही देवता हैं। उस्ताद ज़ौक़ने कहा है : –

जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया ।
फ़रिश्ता उसका हमपाया न पाया ॥

जो मनुष्य संसारका दास नहीं—संसारका कुत्ता नहीं—वह देवताओंसे कहीं ऊँचा है। देवता उसकी बराबरी नहीं कर सकते। जिसमें सांसारिक वासनाओंका लेश न हो, उस मनुष्य और देवताओं में कोई भेद नहीं।

सच्चे महात्मा वन और पर्वतोंको छोड़ कर दुनिया में कभी नहीं आते; वे माँगकर नहीं खाते; उन्हें वनमें ही जो कुछ मिलजाता है वही खालेते हैं।

महाकवि ग़ालिब कहते हैं—

बे तलब दें तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है।
वह गदा जिसका न हो खूये सवाल अच्छा है।

बिना माँगे मिल जानेमें बड़ा आनन्द है। फ़क़ीर वही अच्छा, जिसमें माँगनेको आदत न हो। औरभी कहा है—

दस्ते सवाल सैकड़ों ऐबों का ऐब है।
जिस दस्त में यह ऐब नहीं वह दस्ते ग़ैब है।

कबीरने भी कहा है—

अनमाँग्या उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय।
कहै कबीर निकृष्ट सो, पर घर धरना देय॥
उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन।
कहै कबीर ताके गहे, महा परमसुख चैन॥

महापुरुष भगवानके भरोसे रहते हैं, इसलिए उन्हें उनकी ज़रूरत की चीज़ें उनके स्थान पर ही मिल जाती

हैं। वे संसाररूपी काजलकी कोठरी में आकर कालोंस लगाना पसन्द नहीं करते। संसारी लोगोंके साथ मिलने-जुलनेमें भलाई नहीं। संसारसे दूर रहनाही भला।

छप्पय।

बसें गुहागिरि, सुचित शिला शय्या मनमानी।
वृक्ष वकल के वसन, स्वच्छ सुरसरि को पानी।
बनमृग जिनके मित्र, वृक्ष फल भोजन जिनके।
विद्या जिनकी नारि, नहीं सुरपति सम तिनके।
ते लगत ईश सम मनुज मोहिं, तनुशुचि ऐसे जग भए।
जे पर सेवा के काज को, हाथ नाहिं जोरत नए॥९४॥

94. I think such persons are only affluent who do not bow their heads to any one, who make a mountain stone their bed, a cave their home, the bark of trees their clothes, the wild deer their friends and the soft fruits of wild trees their food, who drink the water coming out of natural springs and who consider knowledge only to be their beloved wife.

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीवच्छटायां
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यांवटविटपिभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च॥

कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुःश्वासिकानां वक्त्रं
वीक्षेत दुःस्थे यदि हि न विभृयात्स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ॥८५॥

जबकि गंगा जो शिवजी के मस्तकको चूमती हुई भली मालूम होती है, वड़की डालियों की छालों और अपने तटपर लगे हुए फलों से गुज़ारा करनेको तैयार है, तब कौन विद्वान् या ज्ञानी, यदि दुःखित कुटुम्बियों पर दया न आती तो, कंगाली की मुसीबतों से आह भरती हुई — दुःख से गहरे साँस लेती हुई — स्त्री का मुख देखना चाहता ? ॥८५॥

मतलब यह है कि, पुरुष को किसी प्रकारका भी दुःख उठानेकी ज़रूरत नहीं, उसे गंगा ही सब कुछ देनेको तैयार है। वह गङ्गाजल पीकर और उसके किनारे पर उगे हुए वनफल खाकर और वटवृक्षकी छालोंके कपड़े पहन कर गुज़ारा कर सकता है, पर स्त्रीके कारण वह ऐसा कर नहीं सकता। सारांश यह कि, सब दुःखोंकी मूल स्त्री है। यदि कुटुम्ब-वृद्धिकी ज़रूरत न हो, तो स्त्री की दरकार नहीं, और यदि स्त्री न हो तो फिर दुःख ही क्या ? किसी की खुशामद करने, जने जनेकी लल्लोपत्तो करने, दुष्टोंके कटुवचन सुनने को स्त्री ही मजबूर करती है। दयाके मारे पुरुष से उसका और उसके बच्चोंका कष्ट देखा नहीं जाता।

छप्पय ।

सोहत जो शिवसीस, जटा सुरसरि की धारा ।
बटतरु वल्कल फूल, जासु सदवृत्ति अपारा ।
त्याग सुखद अस गंग, कौन ऐसो नर वो है ।
परिजन करुणाहीन, नारि को आनन जोहै ।
दीर्घ श्वाससों विपतिज्वर, जीरण भारी गहतु हैं ।
सबविधि यह दुखकी खान, अति निर्दय जेहि त्रिय कहतुहैं ९५

95. When the Ganges which looks beautiful in her action of kissing the Shiva's head, is ready to supply a livelihood by offering the bark of banyan trees and good fruits growing on her banks, what wise man would care to look at the face of a wife heaving deep sighs of distress caused by extreme poverty, were it not for kindness towards the afflicted members of his family ?

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम् ॥
आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते९६॥

आश्चर्यकी बात है, कि लोग काशी छोड़कर और जगह क्यों बसते हैं, जहाँ उपवनोंमें नाना प्रकारके भोजन बनाकर खाना ही कठिन तप है, लंगोटी पहनना ही बढ़िया कपड़ा है, जहाँ भीख माँगना ही प्रतिष्ठा है, जहाँ मौतका आना ही परम मङ्गल समझा जाता है ? ॥८६॥

लोगोंका ख़याल है, कि जो काशीमें मरता है, उसकी मोक्ष होजाती है ; इसीसे अनेक लोग वृद्धावस्था आते ही सबको छोड़कर काशीमें जा बसते हैं। वहाँ मौत से कोई नहीं डरता ; वहाँ की मृत्युको लोग परम शान्तिदायिनी समझते हैं*। वहाँ कोपीन लगाकर भीख माँगनेवाले बुरी नज़रसे नहीं देखे जाते, इसलिए लोगोंको काशी-वास करना चाहिये।

कुण्डलिया।

काशी में जहँ शिव बसत, बैठ तासु उद्यान।
विविध अशन सम तप नहीं, देख्यौ उग्र महान।
देख्यो उग्र महान, भीख जहँ सुन्दर भूषण।
खण्ड एक कोपीन, वसन बहुमूल्य अदूषण।
मरणहि मंगलकरण, मिलै जहँ हर अविनाशी।
को ऐसो विद्वान्, तजै जो ऐसी काशी॥ ९६॥

---

*आजकल भी इस ख़यालके लोग बहुत हैं, पर पहले जितनी महिमा अब नहीं।

86. It is a wonder why wise men like to take up their abode in any other place than Kashi, where partaking of different kinds of eatables in gardens is the most austere penance, where the wearing of a narrow strip of loin-cloth is considered as respectable dress, where unrestricted wandering beggary is thought to be honourable and where the near approach of death is looked upon as bringing everlasting bliss !

नायंते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ॥
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥८७॥

हे मन ! जिनके द्वारपर,—"मालिक मकानसे मिलने का समय नहीं है, वे इस समय एकान्तमें बैठे हैं, वे इस वक्त सो रहे हैं, अगर तुम्हें यहां खड़ा देखेंगे तो नाराज़ होंगे"—ऐसी बातें सुनाई देती हैं, उनको त्याग कर विश्वेशकी शरणमें जा, जिनके द्वारपर रोकने वाला दर्बान नहीं, जहां निर्दय और कठोर वचन कभी सुननेमें नहीं आते, जो अनन्त और नित्यसुख के देने वाले हैं ॥८७॥

अरे मूर्ख ! विश्वेशकी शरण में क्यों नहीं जाता, जिनके द्वार पर रोकनेवाले दरवान नहीं हैं, जहाँ निर्दय और कठोर वचनों का नाम भी नहीं है ? [पृ० २०४ श्लोक ८७

मूर्ख मनुष्य ना-समझीके कारण, वृथा अमीरोंके दरवाजोंपर जाता है और अपमान-सूचक बातें सुनता है, जिनके यहाँ जाता है उनसे मिलनेमें बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करता है, दरबानों की तरह-तरह की बेढङ्गी बातें सुनता है। अगर वह कुछ भी अक्लसे काम ले, तो उसे उसके द्वारपर जाना चाहिये, जहाँ कोई रोकनेवाला नहीं, जहाँ दिल दुखानेवाली बातोंका नाम भी नहीं, जो सारे संसारका स्वामी और नित्य सुखके देनेवाला है। वह क्या उसकी इच्छा पूरी न करेगा? अवश्य पूरी करेगा। जो बिना जड़ की अमरबेल को पोषता है, उसे छोड़कर और को खोजना भूलकी बात है। रहीम कवि कहते हैं—

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
"रहिमन" ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि? ॥

और भी—

जा दिनतें गर्भवास तज्यो नर।
आइ आहार लियो तबही को ॥
खातहि खात भये इतने दिन।
जानत नाहिं न भूख कहीं को ॥
दौरत धावत पेट दिखावत।
तू शठ कोट सदा अनही को ।

या इस जन्मकी भूलों के कारण, उसे विपत्तियाँ भोगनी ही पड़ती हैं। विपत्तियों से पार होनेके लिए मनुष्य रात-दिन चिन्तित रहता है। इस चिन्ता से मनुष्यका रूप रंग आदि सब नष्ट होकर शीघ्रही बुढ़ापा आ जाता है। आजकल ४० बरस की उम्र में ही लोग बूढ़े होजाते हैं, इसका कारण चिन्ता है। अगर चिन्ता न होती, तो मनुष्य को कुछ दुःख न होता। जहाँतक हो, मनुष्यको चिन्ता को पास न आने देना चाहिए। क्योंकि चिन्ता चितासे भी बुरी है। चिता मरे हुए को भस्म करती है, पर चिन्ता जीते को ही जलाकर ख़ाककर देती है। चिन्ता और विपत्तियोंसे बचने के लिए, भगवान्‌का आश्रय लेना सर्वोपरि उपाय है। विपत्ति रूपी समुद्र में डूबते हुए के लिए भगवान्‌का नाम ही सच्चा सहारा है। कहा है—

तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥

तुलसी असमयके सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, रामशरण आधार॥

खेलत बालक व्याल संग, पावक मेलत हाथ।
तुलसी शिशु पितुमात इव, राखत सिय रघुनाथ॥

तुलसी केवल रामपद, लागै सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ, कतहुँ रहै किन देह॥

सारांश यह, कि जो हमारे चित्तको चिन्ताके चाक पर चढ़ाकर विपत्तियोंके डण्डे से घुमाता है, यदि हम उसी की शरणमें चले जायँ, उसी से प्रेम करें; तो वह हमारे चित्तको चिन्ताके चाक पर न रक्खे ; अर्थात् हमें चिन्ताग्निमें न जलना पड़े। सुख शान्ति सदा हमारे सामने हाथ बांधे खड़े रहें। यह बला उन्हींको खाती है, जो भगवान्से विमुख रहते हैं। इसलिए यदि इस से बचना चाहो, तो परमात्मा को भजो।

दोहा।

मनको चिन्ताचक्र पर, खलाविधि रह्यौ घुमाय।
रचि है कहा कुलालसम, जान्यो कछू न जाय ॥६८॥

98. O friend, we do not know what the unfriendly Brahma, the creator of the world, will do to us, bent as he is on revolving our minds mercilessly fixing them on the wheel of cares, made unceasingly to turn round and round by the application of the stick of vicissitudes like a clever potter who puts a lump of wet clay on his wheel and by turninj it round with a stick shapes it into any desired vessel.

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ॥
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥८६॥

यद्यपि मुझे विश्वेश्वर शिव और सर्वात्मन विष्णुमें कोई भेद नहीं दीखता, तथापि मेरा मन उन्हींकी ओर झुकता है, जिनके मस्तकमें तरुण चन्द्रमा विराजमान् है, अर्थात् मैं शिवको चाहता हूँ ॥८८॥

विष्णु और शिवमें कोई भेद नहीं, एक ही परमात्मा के अलग-अलग अनेक नाम हैं ; वही कृष्ण हैं, वही रघुनाथ हैं, वही राम हैं और वही शिव हैं। पर फिर भी ; जिस नाम का आश्रय लेलिया, उसीका भरोसा रखना ठीक है। मन भटकाना अच्छा नहीं।

एक बार गोस्वामी तुलसीदासजी वृन्दावन गये। वहाँ उन्हें भगवान् कृष्णके दर्शन हुए। भगवान् की बाँकी झाँकी देखकर गुसाईंजी मुग्ध होगये, पर उन्होंने उनको सिर न नवाया, क्योंकि उनके इष्टदेव रामचन्द्र जी थे। उन्होंने उस समय कहा—

कहा कहूँ छवि आजकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषबाण लेओ हाथ॥

"आपकी छवि आज बहुतही मनोसुग्धकर है, पर मैं तो आपको जभी प्रणाम करूँगा, जब आप धनुषबाण हाथमें लेकर रामचन्द्र बनोगे।" भगवान् को तत्काल धनुषबाण हाथमें लेना पड़ा। यह काम भगवान्को भक्तकी दृढ़ता देखकर करना पड़ा। गोस्वामीजीने कहा है—

चातक बन तजि दूसरे, जियत न नाई नारि ।
मरत न माँगे अर्धजल, सुरसरिहु को वारि ॥
व्याधा बधो पपीहरा, परो गंगजल जाय ।
चोंचमूँदि पीवे नहीं, धिक पीवन प्रण जाय ॥

सारांश यह है, कि भगवान् के भी जिस नाम से प्रेम हो, उसे छोड़कर दूसरे से प्रेम न करना चाहिये । एक ही पति की स्त्री होनेमें भलाई है । जिसके अनेक पति होते हैं, उसका भला नहीं होता । कहा है—

पतिव्रताको सुख घना, जाके पति है एक ।
मन मैलो व्यभिचारिणी, जाके खसम अनेक ॥
पतिव्रता पति को भजे, और न अन्य सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना, तोभी घास न खाय ॥
"कबिरा" सीप समुद्रकी, रटै पियास पियास ।
सकल बूँद को ना गिनैं, स्वाति बूँदकी आस ॥
प्रीति रीति तुझ सों मेरे, बहु गुनियाला कन्त ।
जो हँसि बोलूँ और सूँ, तो नील रंगाऊँ दन्त ॥

दोहा ।

नाहिंन शिव अरु विष्णु में, सूझे अन्तर मोय ।
तदपि चन्द्रशेखर लखत, प्रीति अधिक कछु होय ॥९९॥

99. *Although I see no difference between Shiva, the Lord of the universe, and Vishnu*

the Omnipresent, but my love flows towards the One who bears the new moon on his forehead, i. e., Shiva,

रे कंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटंकारवैः
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथाजल्पसि ॥
मुग्धे स्निग्धविदग्धक्षेपमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूड़चरणध्यानामृतं वर्त्तते ॥१००॥

हे कामदेव! तू धनुष्टङ्कार सुनाने के लिए क्यों बार-बार हाथ उठाता है? हे कोकिला! तू मीठी-मीठी सुहावनी आवाज़ में क्यों कुहु-कुहु करती है? ऐ मूर्खा स्त्री! तू अपने मनोमोहक मधुर कटाक्ष मुझपर क्यों चलाती है? अब तुम मेरा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि अब मेरे चित्तने शिवके चरण चूमकर अमृत पी लिया है ॥१००॥

जब तक मनुष्यका मन ब्रह्मानन्द का मज़ा नहीं जानता, जबतक वह परमात्माके चरणोंमें ध्यान लगाकर अमृत नहीं पीता, तभी तक कामदेव का ज़ोर चलता है, तभी तक कोकिलका पञ्चमस्वर उसके दिलमें खलबली पैदा करता है, तभी तक स्त्रीके कटाक्ष-बाण उसपर असर करते हैं। कामारि शिवसे प्रीति होनेसे, ये सब कुछ नहीं कर सकते। भगवान् शिव और कामदेवमें बैर है, अतः शिवभक्तों पर कामदेव अपने अस्त्र नहीं चला सकता।

हे कामदेव ! तू धनुष्टङ्कार के लिए क्यों बारम्बार हाथ उठाता है? हे कोकिल! तू क्यों कुहु कुहु करती है? हे स्त्री! तू क्यों मधुर मधुर कटाक्षबाण चलाती है? अब तुम सब मेरा कुछ नहीं कर सकते; क्योंकि अब मेरे चित्तने शिवके चरण चूम कर अमृत पी लिया है। [पृष्ठ २१२ श्लोक १००

छप्पय ।

अरे काम बेकाम, धनुष टंकारत तर्जत ।
तू हू कोकिल व्यर्थ बोल, काहेको गरजत ।
तैसेही तू नारि, वृथाही करत कटाक्षैं ।
मोहि न उपजै मोह, छोह सब रहिगे पाछै ।
चित चन्द्रचूड़ के चरण को ध्यान अमृत बरषत हितें ।
आनन्द अखण्डानन्द को, ताहि जगत सुख क्यों हिते ॥१००

100. O Cupid, why dost thou raise thy hand repeatedly to make the sound of thy bow-string audible? O cuckoo, why dost thou prattle in vain uttering forth thy soft and melodious strains? O foolish woman, let alone thy loving and sweet coquetries, as my mind has now drunk the nectar of kissing the feet of Shiva in prayer

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने ॥
मित्रामित्र समानतातिविमला चिन्तातिशून्यालये
ध्वस्ताशेषमदप्रमाद मुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥१०१॥

वही योगी सुखी है, जो एकदम से फटो-पुरानो सैकड़ों चिथड़ों से बनो कोपीन पहनता है और वैसीही

गुदड़ो ओढ़ता है, जिसके पास चिन्ता नहीं फटकती, सुखसे मिला हुआ भिचान्न खाता है, जो श्मशान-भूमि या वनमें सो रहता है, जो मित्र और शत्रुओंको समान समझता है, जो सूनी झोंपड़ीमें ध्यान करता है और जिसके मद और प्रमाद सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो गये हैं ॥१०१॥

फटी पुरानी कोपीन पहनने, चिथड़ोंकी गुदड़ी ओढ़ने, निश्चिन्त रहने, सुखसे मिले भिचाके अन्नके खाने, मरघट या जङ्गलमें सो रहने, दोस्त और दुश्मनको बराबर समझने और नितान्त सूने घरमें पवित्र ध्यान करनेसे:जिसके मद और प्रमाद नाश होगये हैं, वह योगी संसारमें सुखी है। ऐसे महापुरुषोंको किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं होती। जिसे किसी चीज़की इच्छा नहीं, उसे किसकी ग़रज़ ? जो मित्र और शत्रुको एक नज़र से देखते है, जहाँ जगह पाते हैं वहीं पड़ रहते हैं, जो मिल जाता है वही खा लेते हैं, उन्हें न चिन्ता राचसी सताती है, न उन्हें घमण्ड होता है और न उन्हें मस्ती सताती है। वे तो ब्रह्म के ध्यानमें मग्न रहते हैं, इसलिये दुःख उनके पास नहीं आता, वे सदा सुखमें दिन बिताते हैं। जो लोग बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनते हैं, शाल-दुशाले ओढ़ते हैं, अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन करते हैं, मख़मली गद्दे तकियोंपर सोते हैं, किसीको दोस्त और किसीको दुश्मन समझते हैं, ब्रह्म का ध्यान नहीं करते, उनको

चिन्ता लगीही रहती है। देखने में वे सुखी मालूम होते हैं, पर भीतर-ही-भीतर उनकी आत्मा जला करती है, चिन्ता उनको खोखला कर डालती है, क्योंकि बढ़िया-बढ़िया भोजन और वस्त्रों के लिये उन्हें सदा उपाय करने पड़ते हैं, उनकी रक्षाकी चिन्ता करनी पड़ती है। ऐसों के ही मित्र और शत्रु होते हैं। जिनका ये भला करते हैं, जिन्हें कुछ सहायता देते हैं अथवा जिन्हें कुछ मिलनेकी आशा रहती है, वे मित्र बन जाते हैं; जिनका स्वार्थसाधन नहीं होता, जो उनके ठाठ बाट और वैभव को फूटी आँखसे नहीं देख सकते, वे उनके नाश की चेष्टा करनेसे उनके दुश्मन हो जाते हैं। इसलिए उन्हें रात-दिन शत्रुओं से बदला लेने--उन्हें पराजित करनेकी फिक्रके मारे क्षणभर सुखकी नींद नहीं आती। अपने वैभव और ऐश्वर्य्यको देखकर उन्हें स्वतः ही अभिमान हो आता है। अभिमानके नशेमें वे अनर्थ करने लगते हैं; इससे उन्हें सदा भयभीत रहना पड़ता है। बहुत क्या कहें, जिनको आप अमीर देखते हैं, जिनको आप स्त्री-पुत्र धन-रत्न गाड़ी-घोड़े मोटर प्रभृति से सुखी देखते हैं, वे वास्तवमें ज़रा भी सुखी नहीं हैं। सुखी वही है, जिसे किसी चीज़की ज़रूरत नहीं, जिसे किसी से वैर या प्रीति नहीं, जिसे ज़रा भी अभिमान नहीं, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, जो कभी

चिन्ताको पास नहीं आने देता, जो ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है। भला राजा महाराजा और धनी लोग इस सुख को कैसे पा सकते हैं ? अगर सुखी होना चाहो, तो संसारको त्याग कर, एकदम से निश्चिन्त होकर, परमात्माके सिवा किसी भी चीज़ की चिन्ता न करो।

जो लोग संसारको त्यागें, वह सच्चे मनसे त्यागें; ढोंग करने से कोई लाभ नहीं। आजकल ऐसे बनावटी महात्मा बहुत देखनेमें आते हैं, जो जटा जूट बढ़ा लेते हैं, खाक रमाते हैं, आंखें लाल करते हैं, गंगामें पहरों खड़े रहते हैं, शूलोंकी शय्या पर सोते हैं, पर उन की आशा और तृष्णा नहीं जाती। वे ज़ाहिरा कष्ट उठाते हैं, कर्मेन्द्रियों से उनका काम नहीं लेते; पर मन और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें नहीं करते, वासनाओंका त्याग नहीं करते, इससे उनका जीवन वृथा जाता है। ऐसे लोगों के सम्बन्धमें महात्मा कबीर कहते हैं—

निरबन्धन बंधा रहे, बंध्या निरबन्ध होय।
कर्म करे करता नहीं, दास कहावे सोय॥

कृष्ण भगवान् गीताके तीसरे अध्याय के छठे श्लोकमें कहते हैं—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियोंको वश करके कुछ काम तो नहीं करता ; किन्तु मनमें इन्द्रियों के विषयोंका ध्यान किया करता है, वह मनुष्य झूठा और पाखण्डी है।

मतलब यह है, कि मनुष्यको हाथ, पैर, मुँह, गुदा और लिंग को वश में कर लेने और इनसे कोई काम न लेने से कोई लाभ नहीं, इनसे तो इनका काम लेना ही चाहिये : किन्तु आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा—को वशमें करना चाहिये। आँख कान आदि पाँचों ज्ञान-इन्द्रियोंको वशमें करना या अपने-अपने विषयोंसे रोकना ज़रूरी है। बहुतसे लोग ज़ाहिरमें सिद्ध बनने के लिये हाथ पांव प्रभृति कर्मेन्द्रियों से काम नहीं लेते, किन्तु मनमें भाँति-भाँति के इन्द्रिय-विषयों की इच्छा किया करते हैं। भगवान् कृष्ण ऐसों को पाखण्डी कहते हैं।

सबसे अच्छा और सिद्ध पुरुष वही है, जो ज़ाहिरा तो काम करता है. किन्तु अन्दर से मन और ज्ञानेन्द्रियों को विषय-वासना से रोकता है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

हे अर्जुन ! जो मनसे आँख कान नाक आदि इन्द्रियों को वशमें करके और इन्द्रियोंके विषयोंमें मन न लगाकर "कर्मयोग" करता है वही श्रेष्ठ है।

रहीम ने यही बात कैसी अच्छी तरह कही है:—

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जलमें छाया जो परी, काया भीजत नाहिं॥
तनको योगी सब करें, मनको बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय॥

मतलब यह है, कि ढोंग करने से कोई लाभ नहीं। जिनका दिल साफ है, जिन के दिलसे वासनायें निकल गई हैं, उन्हें नहाने धोने प्रभृति दिखाऊ कामों या दूकान्दारी की ज़रूरत नहीं है—

महाकवि ज़ौक़ कहते हैं—

सरापा पाक हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनिया से।
नहीं हाजत कि वह पानी बहायें सरसे पाऊँ तक॥

जिन्होंने दुनियासे हाथ धोलिये हैं, वे सिर से पाँव तक शुद्ध होगये हैं। उन्हें सिरसे पाँव तक पानी बहाकर स्नान करनेकी ज़रूरत नहीं।

मन जब वासना-हीन होजाता है, तब वह सूखी दियासलाईके समान हो जाता है। सूखी दियासलाई जिस तरह झट जल उठती है, पर सीली नहीं जलती; उसी तरह वासना-हीन मन पर परमात्मा का रंग जल्दी चढ़ता है; किन्तु वासना-युक्त मन पर हरगिज़ नहीं। इसलिए मनको वासनाहीन करना चाहिये। साथ ही

भक्ति भ निष्काम करनी चाहिये। ईश्वरसे मुरादें न माँगनी चाहियें। कामना रखकर भक्ति करनेसे कामनायें अवश्य पूर्ण होती हैं—ईश्वर भक्त की इच्छा अवश्य पूरी करता है ; पर वैसी भक्तिसे परिणाममें भय है। उन फलोंके भोगने के लिये जन्मना और मरना पड़ता है। किन्तु जो लोग बिना किसी इच्छाके परमात्मा की भक्ति करते हैं, वे मुक्ति लाभ करते हैं। उन्हें जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता।

जब साधकके मनमें कुछ कामना नहीं रहती, तब उसके मनसे ईर्षा-द्वेष, मित्रता-शत्रुता सब दूर हो जाती हैं। वह सब जगत् को एक नज़र से देखता है। वह किसी की आशा नहीं रखता, केवल परमात्मा की शरण ले लेता है ; इसलिये उसे सहजमें मुक्ति मिल जाती है। गोस्वामी तुलसी दासजीने कहा है—

तबलगि हमतें सब बड़े, जब लगि है कुछ चाह।
चाह-रहित कहको अधिक, पाय परमपद थाह॥

जब तक मनमें ज़रा भी आशा रहती है, तभीतक मनुष्य किसीको बड़ा मानता है, किसी का दास बनता है ; जब आशा नहीं रहती, तब वह सबको समान समझता है और सबका आसरा छोड़ परमात्माका आसरा पकड़ता है ; इससे उसको भवबन्धन से छुटकारा मिल कर परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

छप्पय ।

कन्था अरु कोपीन, फटी पुनि महा पुरानी ।
बिना याचना भखि, नींद मरघट मनमानी ।
रह जग सों निश्चिन्त, फिरै जितही मन आवै ।
राखे चितकूँ शान्त, अनुचित नहिं भावै ।
जो रहैं लीन अस ब्रह्ममें, सोवत अरु जागत यदा ।
है राज तुच्छ तिहुँ भुवन को, ऐसे पुरुषन कों सदा ॥१०१॥

101. Happy is the recluse who wears a totally worn out loin-cloth, torn into a hundred pieces as well as a covering sheet in the same tattered condition, who is free from cares and eats food easily got by begging, who sleeps in a cremation-ground or a forest, who is indifferent to friends as well as to foes, who sits in contemplation in a lonely cottage and whose vanity and passions have been totally destroyed.

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येव कृते परिभ्रमत रे लोका कृतं चेष्टितैः ॥
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां
कामोच्छित्तिवशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥१०२

नाना प्रकारके विषय-भोग नाशमान् हैं, वे संसार-बन्धनके कारण हैं, इस बातको जान कर भी मनुष्यो! उनके चक्करमें क्यों पड़ते हो? इस चेष्टासे क्या लाभ होगा? अगर आपको हमारी बातका विश्वास हो, तो आप अनेक प्रकारके आशा-जालके टूटनेसे शुद्ध हुए चित्त को सदा कामनाशक स्वयंप्रकाश शिवजी के चरणोंमें लगाओ। (अथवा अपनी इच्छाओंके समूल नाश करनेके लिए, अपनेही आत्माके ध्यानमें मग्न हो जाओ) ॥१०२॥

हे मनुष्यो! संसारी विषय भोग जिन पर आप फूले हुए हैं, सदा नहीं रहेंगे। ये नाशमान् और अनित्य हैं, ये भवबन्धनके कारण हैं, इनकी वजह से ही जन्म-मरण की फांसी नहीं छूटती। मतलब यह, कि विषय विषसे भी बुरे और निरन्तर दुःखके कारण हैं। फिर; मनुष्य जान-बूझकर भी इनके फेरमें पड़ा रहता है, यह बड़ी भूल है। अगर मनुष्य सच्चा और नित्य सुख भोगना चाहता है, तो उसे आशा-तृष्णा का जाल काटकर, अपने चित्तको एक दम शुद्ध करना चाहिये और फिर शुद्ध चित्तसे एकमात्र आत्मा या परमात्मासे प्रीति करनी चाहिये। इससे उसकी इच्छाओंका नाश हो जायगा और वह संसार-बन्धन—जन्ममरण—से छूटकर सदा सुखी रहेगा। स्वप्नवत संसार पर हरगिज़ न भूलना चाहिये। ज्ञानी इसे कोरा भ्रम मानते हैं।

महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं—

कोऊ नृप फूलनको सेज पर सूतो आई।
जब लग जाग्यो तौ लौं, अति सुख मान्यो है॥
नींद जब आई, तब वाही कूँ स्वपन भयो।
जब पर्‌यो नरक के कुण्डमें, यूँ जान्यो है॥
अति दुःख पावे, परि निकस्यो न क्यूँ हो जाहि।
जागि जब पर्‌यो, तब स्वपन वखान्यो है॥
यह झूठ वह झूठ, जाग्रत स्वपन दोऊ।
सुन्दर कहत, ज्ञानी सब भ्रम मान्यो है॥

छप्पय।

अति चंचल ये भोग, जगतहूँ चंचल तैसो।
तू क्यों भटकत मूढ़ जीव, संसारी जैसो।
आसाफाँसी काट, चित्त तू निर्मल ह्वैरे।
साधन साधि समाधि, परम निज पदको ह्वैरे।
करि रे प्रतीति मेरे वचन, ढुरिरे तू इह ओरकों।
छिन यहै यहै दिनहू भल्यो, निज राखै कछु भोरकों॥१०२॥

102. The various kinds of sensual pleasures are liable to destruction. They are the causes of worldly bondage, what for, O men, then do you wander about so busily? If you trust upon my word, then it is better

for you to fix your mind, made pure by the calming down of the hundredfold network of hopes, in contemplation within your own Self for the extermination of your desires.

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशंकमङ्केशयाः ॥
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परिक्षीयते ॥१०३॥

वे धन्य हैं, जो पर्वतोंकी गुफाओं में रहते हैं और और परमब्रह्म की ज्योति का ध्यान करते हैं, जिनके आनन्दाश्रुओं को उनकी गोदमें बैठे हुए पक्षी निर्भयता से पीते हैं। हमारी ज़िन्दगी तो मनोरथोंके महलकी बावड़ीके किनारे के क्रीड़ा उद्यानमें लीलायें करते हुए ही वृथा बीतती है ॥१०३॥

मतलब यह, कि वे लोग सफल-काम हैं, जो पहाड़ों की गुफाओं में बैठे हुए परमात्माकी ज्योतिका ध्यान करते रहते हैं और उस ध्यानमें इतने मग्न हो जाते हैं, कि उन्हें अपने तनोबदन की भी सुध नहीं रहती। उनको भीतर-ही-भीतर उस ब्रह्मके ध्यान से जो आनन्द बोध होता है, उस से उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं। पक्षी उनकी गोदमें बैठकर, निडर होकर, उन आँसूओंको पीते हैं। उन्हें कुछ ख़बर नहीं, कि पक्षी

गोदमें बैठे हैं या क्या कर रहे हैं। वे तो आनन्दमें बेसुध रहते हैं। यही आनन्द परमानन्द है, इससे परे और आनन्द नहीं। जिनको यह सच्चा आनन्द मिलता है, वही सच्चे भाग्यवान हैं। एक वह हैं और एक हम अभागे हैं, जो रात-दिन मनोरथों के महल गढ़ा करते हैं—रात-दिन मिथ्या कल्पनायें किया करते हैं। इन शेख़चिल्ली के से गढ़न्तोंसे हमें कोई लाभ नहीं। इन झूठे ख़याली पुलावों के पकाने में हमारा दुष्प्राप्य जीवन वृथा नष्ट होता है।

जो मनुष्य मानव-चोला पाकर परमात्मा का भजन नहीं करते, परमात्माके दर्शन की चेष्टा नहीं करते—उनका जीवन वृथा है। इसीलिए उस्ताद ज़ौक़ने कहा है:—

दिल वह क्या, जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या, जिसको तेरे दीदकी हसरत नहीं॥

वह दिल ही नहीं, जिसे तेरे पानेकी इच्छा न हो और वह आँख ही नहीं, जिसे तेरे दर्शन की लालसा न हो।

भाइयो! बीती सो तो बीती, अब तो चेत करो और प्रभुसे लौ लगाओ। आज-कल मत करो, नहीं तो पछताओगे। अन्त समय पछतानेसे कोई लाभ न होगा। जो

लोग विचार-ही-विचार करते रहते हैं, वे धोखेमें रह जाते हैं और काल एक दिन अचानक आकर उनकी चोटी पकड़ लेता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

गये पलट आवें नहीं, सो करु मन पहचान।
आजु जेई सोई कालहि है, तुलसी भर्म न मान॥
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पलमें प्रलय होगी, बहुरि करोगे कब?॥
रामनाम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाई तें पैरबो, धोखे बूड़ि न जाय॥

छप्पय।

योगी जग विसराय, जाय गिरिगुहा बसत हैं।
करत ज्योति को ध्यान, मगन आँसू वरषत हैं।
खगकुल बैठत अंक, पियत निःशंक नयनजल,
धनि धनि हैं वे धीर, धन्यो जिन यह समाधिबल,
हम सेवत कारी बागसर, सरिता बापी कूपतट
खोवत हैं योंही आयुकों, भये निपटही निरघट॥१०३॥

103. Worthy of all praise are those who live in the caves of mountains and contemplate upon the Supreme Light and whose tears of joy are drunk by birds sitting fearlessly in their laps, while our lives are passing

fruitlessly away in pursuing frolicksome avocations in the play-gardens, situated on the banks of the tank, belonging to the spacious mansion of Desire.

आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः ॥
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा॥१०४॥

मृत्युने जन्मको ग्रस रक्खा है, बुढ़ापे ने बिजलीके समान चञ्चल युवावस्था को ग्रस रक्खा है, धनकी इच्छाने सन्तोष को ग्रस रक्खा है, स्त्रियोंके हावभावोंने मानसिक शान्तिको ग्रस रक्खा है, जलनेवालोंने गुणोंको ग्रस रक्खा है, सर्प और जंगली जानवरोंने वनको ग्रस रक्खा है, दुष्टों ने राजाओंको ग्रस रक्खा है, अस्थिरता या चञ्चलता ने धनैश्वर्य्य को ग्रस रक्खा है; तब ऐसी कौनसी अच्छी चीज़ है जो किसी दूसरी नाशक चीज़के चंगुल में नहीं है ? १०४

खुलासा यह है, कि जन्मको मृत्युका भय है, जवानी को बुढ़ापेका भय है, सन्तोषको लोभका भय है, शान्ति को स्त्रियोंके हावभाव और विलासोंका भय है, गुणोंको उनसे जलने या कुढ़नेवालों का भय है, वनमें सर्प और हिंसक पशुओंका भय है, राजाओंमें दुष्ट दरबारियों का भय है, धन और ऐश्वर्य्य में क्षणभंगुरता का भय है।

संसारमें ऐसी कोई अच्छी वस्तु नहीं है, जिसे किसीका भय न हो। मतलब यह है, कि संसारमें सभी नाशमान् हैं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है, जिसका काल नाश नहीं कर देता, अथवा जिसे किसी तरह का भय नहीं है।

संसारकी यह दशा है, तब भी तो मनुष्य चेत नहीं करता, यही तो आश्चर्य की बात है! मनुष्य अपना हानि-लाभ न देखकर, वृथा जंजालों में फँसा रहता है। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—

> करत चातुरी मोहवश, लखत न निज हित हान।
> शुक मर्कट इव गहत हठ, तुलसी परम सुजान॥
> दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तोई नाहिं।
> लखत न कण्टक मीन जिमि, अशन भखत भ्रम नाहिं॥

मनुष्य तरह-तरहके भयों से घिरा हुआ नाना प्रकार के संकट झेलता है। मछली, तोते और बन्दरकी तरह बन्धनमें फँसता है, पर निकलना नहीं चाहता। इन दुःखोंका उसे ज़रा भी ख़याल नहीं आता। रोज़ लोगों को मरते हुए देखता है, रोज़ बूढ़ोंको असह्य कष्ट उठाते देखता है; पर आप नहीं समझता कि मेरी भी यही गति होने वाली है! उलटा हर साल जन्मतिथिको वर्ष-गाँठका उत्सव करता है। मित्रों और रिश्तेदारों को निमन्त्रण देता है। गाना बजाना और नाच रंग कराता है। कैसी बात है, जहाँ रंज

करना चाहिये वहां मनुष्य खुशी मनाता है! उसे समझना चाहिए, कि हर सालगिरहको उसकी उम्रका एक साल कम होता है। महात्मा सुन्दर दासजीने कहा है—

जबतें जनम लेत, तबही तें आयु घटे।
माई सो कहत, मेरो बड़ो होत जात है।
आज और काल और दिन दिन होत और।
दौर्‌यो दौर्‌यो फिरत, खेलत और खात है।
बालपन बीत्यो, जब यौवन लाग्यो है।
यौवनहु बीते, बूढ़ो डोकरो दिखात है।
"सुन्दर" कहत, ऐसे देखत हो बूझि गयो।
तेल घटि गये, जैसे दीपक बुझात है॥

छप्पय।

ग्रस्यो जन्मको मृत्यु, जरा यौवन कों ग्रास्यौ।
ग्रसिवे कों सन्तोष, लोभ यह प्रगट प्रकास्यौ।
तैसेही समदृष्टि ग्रसित, वनिता विलास वर।
मत्सर गुण ग्रसिलेत, ग्रसत वनको भुजंगवर।
नृप ग्रसित किये इन दुर्जनन, कियो चपलता धन ग्रसित।
कछुहु न देख्यो बिन ग्रसित जग, याही तें चित अति त्रसित १०४

104. Birth is threatened by death; youth which is transitory like lightning, by old age; contentment by greed for wealth; mental

peace by the strong allurements of women ; good qualities by jealous persons ; forests by serpents and wild animals ; kings by wicked courtiers and wealth and power by shortness of duration. What good thing exists there which does not lie in the clutches of something else capable of destroying it ?

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः ॥
जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्तत्किं
नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम् ॥ १०५ ॥

सैकड़ों मानसिक और शारीरिक रोग स्वास्थ्य का नाश कर डालते हैं। जहाँ सम्पत्ति और प्रभुता है, वहाँ विपत्ति दरवाज़ा तोड़ कर चोर की तरह चढ़ाई करती है। जो जन्म लेता है, उसे मृत्यु शीघ्र ही ज़बर्दस्ती अपने जाबड़ों में फँसा लेती है ; तब निरङ्कुश विधाताने सदा स्थायी रहनेवाली कौनसी चीज़ बनाई है ? ॥१०५॥

मनुष्य-शरीर रोगों का घर है। मानसिक और कायिक रोग सदा उसके भीतर डेरा डाले रहते हैं और स्वास्थ्य का नाश करते रहते हैं। सम्पत्ति पर विपत्ति सदा ताक लगाये खड़ी रहती है और ज़रासा भी मौक़ा पातेही दरवाज़ा तोड़ कर उसका विनाश कर देती है।

२०

जन्म लेनेवाले के सिर पर मौत सदा मँडराया करती है एवं दाँव-घात देखती रहती है और जब मौका पाती है तब उसे अपने पञ्जों में फँसा लेती है; सारांश यह, कि, शरीरके साथ रोग, सम्पत्ति के साथ विपत्ति, जन्म के साथ मृत्यु, संयोग के साथ वियोग, सुख के साथ दुःख, जवानी के साथ बुढ़ापा प्रभृति एक दूसरे के नाशक विधाता ने साथ लगा रक्खे हैं। विधाता ने कोई भी चीज़ सदा स्थायी नहीं बनाई; जो कुछ बनाया है वह चन्दरोज़ा और नाशवान् बनाया है।

संसारकी असारता देखकर, मनुष्यको अपने तईं इस संसारमें पाहुने की तरह समझना चाहिये। जिस तरह पाहुना जहाँ कहीं जाता है और जहाँ ठहरता है, वहाँ के लोगों से दिल नहीं लगाता; उसी तरह समझदारको इस दुनियासे दिल न लगाना चाहिये। कहा है—

जिसको रहना उत घर, सो क्यों तोड़े मित्त।
जैसे पर-घर पाहुना, रहै उठाये चित्त॥
इत पर-घर उत है घरा, बनिजन आये हाट।
कर्म करीना बेचिके, उठि करि चालो बाट॥
मेरा संगी कोई नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जीव विश्वास न होय॥
"कबिरा" ऐसा संसार है, जैसा सेमल फूल।
दिन दशके व्योहार में, झूठे रंग न भूल॥

यह मनुष्य-चोला इसलिए मिला है, कि मनुष्य इस जगत् में दूसरे प्राणियोंकी शुभचिन्तना करे और अपने कर्म-बन्धन काटकर परमपदकी प्राप्ति करे ; पर लोग तो इसकी चमक-दमक पर ऐसे भूल जाते हैं कि, उन्हें अपनी सफ़र का ख़याल ही नहीं रहता। ऐसा समझने लगते हैं, मानों वे सदा यहीं रहेंगे। यहाँ के लिए, जहाँ उन्हें बहुत ही थोड़े दिन रहना होता है, हज़ारों तरहके सामान करते हैं; पर आगेकी लम्बी सफ़रके लिए कुछ भी नहीं करते। यहाँ के लिए इतना आड़म्बर और वहाँ के लिए कुछ नहीं। यह चतुराई तो अच्छी नहीं मालूम होती।

उस्ताद ज़ौक़ने कहा है—

क्या यह दुनिया, जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
वास्ते वाँ के भी कुछ—या सब यहीं के वास्ते॥

इस दुनियामें आकर कुछ परलोक के लिये भी करना चाहिये। यह नहीं, कि उधरकी फ़िक्र बिल्कुल ही न की जाय।

भाइयो! स्त्रीपुत्र प्रभृति के लिए वृथा अमूल्य जीवन नाश मत करो। ये आपके कोई नहीं। ये यहीं के साथी हैं ; वहाँ आपके साथ न जायँगे। वहाँ केवल धर्म ही साथ जायगा। मौत आपके लेजानेके लिए आनाही

चाहती है। इसलिये चेत करो, आँखें खोलो, अब न सोओ। महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं —

वैरी घर माँहि तेरे, जानत सनेही मेरे।
दारा सुत वित्त तेरे, खोंसि खोंसि खायँगे॥
औरहु कुटुम्बी लोक, लूटें चहुँ ओर होते।
मीठी बात कहि, तोसूँ लपटायँगे॥
सङ्कट परेगो जब, कोई नहिं तेरो तब।
अन्तही कठिन, बाकी बेर उठि जायँगे॥
"सुन्दर" कहत, तातें झूठोही प्रपञ्च सब।
स्वपनकी नाईं, यह देखत बिलायँगे॥१॥

घरी घरी घटत, छीजत जात छिनछिन।
भीजतही गरिजात, माटीको सो ढेल है।
मुकुतिके द्वार आइ, सावधान क्यूँ न होइ।
बेर बेर चढ़त न, तियाको सो तेल है।
करि ले सुकृत, हरि भज ले अखण्ड नर।
याहीमें अन्तर पड़े, यामें ब्रह्म मेल है।
मनुष्य-जनम यह, जीत भावै हार अब।
"सुन्दर" कहत, यामें जुआको सो खेल है।

दोहा।

रोग वियोग विपत्ति बहु, देह आयु आधीन।
निठुर विधाता जग रच्यो, महा अथिरता लीन॥१०५॥

मनुष्य की पाँच अवस्थाएँ।

मनुष्यकी पाँचों अवस्थाओं पर ग़ौर कीजिये ! देखिये, मनुष्यको किसी अवस्था में भी सुख नहीं है। याद रखिये, सुख केवल "वैराग्य" में है। अतः संसारको त्यागिये और इसके बनानेवाले से प्रीति कीजिये। [पृ० २३३ श्लोक १०६

105. People's health is destroyed by hundreds of mental and physical diseases. Wherever there is wealth misfortunes come in like thieves breaking open the doors of houses. He who is born, soon falls helplessly into the jaws of death from which there is no escape. Then what is there in this world which is made by the wilful Brahma to last for ever.

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भ-
मध्ये कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमे यौवने वि-
प्रयोगः ॥ नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृ-
द्धभावोऽप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं
स्वल्पमप्यस्ति किञ्चित् ॥ १०६ ॥

प्रथमावस्थामें प्राणी माता के गर्भ में पड़ा रहता है, वहाँ वह मलमूत्र राध लोहू प्रभृति गन्दी चीज़ों के बीच में पड़ा हुआ बड़े-बड़े कष्ट भोगता है और हिल भी नहीं सकता। दूसरी अवस्था—जवानी में, वह अपनी प्यारी स्त्री की जुदाई के दुःख सहन करता है। तीसरी अवस्था—बुढ़ापे में, वह स्त्रियों से अनादृत होकर दुःख में पड़ा रहता है। हे मनुष्यो ! इस संसार में ज़रासा भी सुख हो तो हमें बताओ ॥१०६॥

मनुष्य को, इस जगत् में, किसी अवस्था में भी सुख नहीं है। जब वह गर्भ में आता है, तब वह महान्ध-कार-पूर्ण क़ैदख़ानेमें हाथ-पाँव बँधा हुआ पड़ा रहता है। जिस स्थान पर वह रहता है, वह स्थान—गर्भाशय—मल मूत्र, राध, पीव, जोङ्क, कफ प्रभृति गन्दे पदार्थों से भरा रहता है। वह जगह इतनी तङ्ग है, कि वहाँ वह अच्छी तरह फैल-पसर भी नहीं सकता। नौ महीने बाद बड़ी-बड़ी आफतें झेल कर बड़े कष्टसे राम-राम करके बाहर आता है, तब पराधीन रहता है। आप न उठ सकता है, न बैठ सकता है, न चल सकता है, न खा सकता है। कोई उठा लेता है तो गोद में आ जाता है, नहीं तो अपने मलमूत्र में ही पड़ा रहता है। कोई दूध पिला देता है तो दूध पी लेता है, नहीं तो रोया करता है। इस तरह उसकी पहली अवस्था बड़ी पराधीनी और संकट में कटती है। जब शिशु अवस्था को पार करके बाल्या-वस्था में आता है, तब पढ़ने-लिखनेका भार सिर पर आ पड़ता है। ज़रासा भी दङ्गा करने या न पढ़ने से माता-पिता की ताड़नायें सहनी पड़ती हैं। जब जवान होने पर आता है तब शादी कर दी जाती है। उस अवस्था में उसे कमाने की फिक्र पड़ती है। उस अवस्था में उसे कैसे-कैसे भयङ्कर कष्ट सहने पड़ते हैं, उन्हें सभी भुक्तभोगी जानते हैं। अगर स्त्री से वियोग हो जाता है, तो जल-

जल कर वियोगाग्नि में ख़ाक होता है। अगर धनाभाव रहता है, तो कुटुम्बवालोंकी क्रोधवह्नि में जला करता है। इसके बाद दुःखों की खान बुढ़ापा आता है। इस अवस्था में शरीर शिथिल हो जाता है, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, रूप-रङ्ग मारा जाता है, बाल सफ़ेद हो जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, आँखों से कम सूझता है, कानों से सुनाई नहीं देता, पैरों से चला नहीं जाता, लकड़ी टेक-टेक कर चलता है, कफ और खाँसी अपना दौर दौरा जमा लेते हैं और हर समय दम फूलने के मारे हाँफता रहता है तथा बुद्धि नष्ट हो जाती है। उस समय ख़ास उसकी अर्द्धांगी उस से घृणा करने लगती है, पुत्र उसे कोई चीज़ नहीं समझता और लोग उसे वृथा की बला समझते हैं। पुत्र और पुत्रवधुएँ उसे एक टूटी सी खाट पर पौलीमें डाल देते हैं। उसके थूकने को एक ठिकरा रख देते हैं। आप समय पर अच्छे-से-अच्छा खाना खाते हैं; उसे समय बे-समय, जब याद आ जाती है, बचा-खुचा बासी-कूसी खाना एक पुरानी और फूटी सी थाली या ठीकरे में रख कर दे आते हैं। जब उसका थूक खखार या मल-मूत्र उठाते हैं, तब उसे सैकड़ों तरह की न कहने योग्य बातें सुनाते हैं,—"अब मर क्यों नहीं जाते? सब मरे जाते हैं, पर तुम को मौत नहीं आती!" प्रभृति। यह

हालत बुढ़ापे में होती है। इससे मालूम होता है, कि मनुष्य को तीनों अवस्थाओं में से किसी में भी सुख नहीं है।

अगर घर गृहस्थीमें सौभाग्य से कोई दुःख नहीं होता, घरवाले स्त्री पुत्र आदि अच्छे मिल जाते हैं, घरमें परमात्माकी दयासे सुखैश्वर्य्य के सभी सामान मौजूद होते हैं; तो दूसरे का भला न चीतने वाले, दूसरे को अच्छी अवस्थामें देखकर कुढ़नेवाले तंग करते हैं। वह अपनी ओर से उसके सर्व्वनाश करनेमें कोई बात उठा नहीं रखते। यद्यपि ऐसी बातोंसे उन्हें कोई लाभ नहीं होता; तोभी वह अपनी कीसी करतूतों से बाज़ नहीं आते। हरदम नाक में दम रखते हैं। मतलब यह कि, संसारमें दुःखकी ही अधिकता है, यहाँ सुख है ही नहीं। अगर है, तो बराय-नाम और उससे परिणाम में कोई लाभ नहीं; बरन हानि है। उस्ताद ज़ौक़ कहते हैं—

राहतो रंज ज़माने में हैं दोनों लेकिन।
याँ अगर एकको राहत है तो है चारको रंज॥

निस्सन्देह संसार में सुख और दुःख दोनों ही हैं—पर बहुलता दुःख ही की है, क्योंकि चार दुखियोंमें मुश्किल से एक सुखी मिलता है।

उस्ताद ज़ौक़ एक जगह और कहते हैं:—

हलावते शरमो पासदारी, जहाँमें है ज़ौक़ रंजोख़्वारी।
मजेसे गुज़री, अगर गुज़ारी किसीने बेनामोनंग होकर॥

संसार से दूर रहना अच्छा, यहाँ के सम्बन्धों की जड़ में दुःख और क्लेश भरा हुआ है। जिसने अपनी ज़िन्दगी चुप चाप गुज़ार दी; सच तो यह है, उसने अच्छी गुज़ार दी।

सारांश यह, कि सभी महात्माओं ने संसार के दुःखों का अनुभव करके औरों को चेतावनी दी है, कि इस मिथ्या जगत्की माया में न भूलो। इससे दिल मत लगाओ, किन्तु इसके बनानेवाले के साथ दिल लगाओ। इसके साथ दिल लगाने से तुम्हारा बुरा और उसके साथ दिल लगानेमें भला है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

सलिल युक्त शोणित समुझ, पल अरु अस्थि समेत।
बाल कुमार युवा जरा, है सुसमुझ कारु चेत॥
ऐसिहि गति अवसानकी, तुलसी जानत हेत।
ताते यह गति जानि जिय, अविरल हरिचित चेत॥

स्त्रीके रज और पुरुषके वीर्य्यसे तुम्हारे शरीरके खून मांस और हड्डियाँ बनीं। फिर तुम गर्भके बाहर आये। फिर बालक अवस्थामें रहे, उसके बाद युवावस्था आई, फिर बुढ़ापा आया। फिर मरे और कर्मफल

भोगने को फिर जन्म लिया। इस तरह लोक-वासना के कारण, तुम्हें बारम्बार मरना और जन्मना पड़ता है। इसमें कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं, इन बातोंको याद करते रहो और इनसे बचनेके लिए सावधान होकर परमात्मासे प्रीति करो ; तभी तुम्हारा भला होगा।

प्रीति भी ऐसी वैसी न करो; ऐसी करो कि उस परमात्मा के सिवा अन्य किसी को कुछ समझो ही नहीं; उसकी प्रेममें गर्क हो जाओ; तब देखो क्या आनन्द आता है।

कबीर कहते हैं—

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतङ्ग।
प्रान तजे छिन एकमें, जरत न मोरे अङ्ग॥

इसी बातको उस्ताद ज़ौकने किस तरह कहा है—

कहा पतंग ने यह दारे शमा पर चढ़ कर।
अजब मज़ा है जो मर ले किसी के सर चढ़कर॥

प्रीति ऐसी ही अच्छी होती है। दीपक और पतङ्ग, मछली और जल, नाद और कुरङ्ग,—इनकी प्रीति आदर्श प्रीति है। ऐसी प्रीतिसे ही सच्ची सिद्धि होती है। ऐसी प्रीतिवालों को ही परमात्माके दर्शन होते हैं।

दोहा।

सह्यो गर्भदुख जन्मदुख, जोबन लिया वियोग।
वृद्ध भये सबहिन तज्यो, जगत किधौं यह रोग॥१०६॥

106. In their earliest stage of existence creatures remain in their mothers' wombs in the midst of impurities suffering great hardships with motionless bodies. In youth comes the unbearable pain of separation from consorts. Then comes the miserable old age marked unmistakeably by the insolence of women. Thus O men, let us know if there is any the least happiness in this world !

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ॥
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् १०७

मनुष्य की उम्र औसत सौ बरस की मानी गई है। उसमें से आधी तो रातमें सोनेमें गुज़र जाती है; बाकी में से एक भाग बचपन में और एक भाग बुढ़ापे में चला जाता है। शेष में जो एक भाग बचता है,वह रोग,वियोग, पराई चाकरी, शोक, हानि प्रभृति नाना प्रकार के क्लेशों में बीत जाता है। जल-तरङ्गवत चञ्चल जीवनमें प्राणियोंके लिये सुख कहाँ है ? ॥१०७॥

खुलासा यह है, कि शास्त्रोंमें मनुष्य की आयु १०० वर्ष की मानी गई है। उस में से ५० साल यानी आधी

उम्र तो रात को सोने में चली जाती है। बाक़ी ५० साल रहे। उनके तीन भाग अगर किये जायँ, तो पहले १७ साल बचपन की अज्ञानावस्था और पराधीनता में बीत जाते हैं; दूसरे १७ साल वृद्धावस्था में चले जाते हैं और शेष १६ साल नाना प्रकार के रोग, शोक, वियोग, हानि-लाभ के झगड़ों, दूसरों से लड़ने-झगड़ने प्रभृति में बीत जाते हैं—यानी ५० साल सोने में, १७ साल बचपन की पराधीनता में, १७ साल बुढ़ापे के कष्ट झेलने में, और शेष १६ साल रोग शोक वग़ैरः में बीत जाते हैं। मनुष्यको कभी सुख नहीं मिलता। उसकी सारी उम्र दुःखों में ही बीतती है। फिर भी इस दुःखपूर्ण और पानीकी लहरोंके समान चञ्चल जीवन पर मनुष्य इतना इतराता और ऐंठता है, कि उसकी हद नहीं। और इस घोर दुःखपूर्ण जीवन से अलग होने की बात या मौतका नाम सुननेसे काँप उठता है। अगर इससे दूनी तिगुनी उम्र भी मिल जाय, तोभी पेट नहीं भरता। मरते वक़्त यही कहता है,"—हम कुछ न किये और कुछ दिन जीते तो अच्छा होता।" किसी उर्दू कवि ने ठीक ही कहा है—

हो उम्र ख़िज़्र भी, तो कहेंगे बवक़्ते मर्ग।
हम क्या रहे यहाँ, अभी आये अभी चले॥

चाहे हज़ारों वर्ष की उम्र होजाय, पर मरते समय यही कहेंगे, इस संसारमें कुछ भी न रहे, अभी आये अभी जाते हैं; जीनेकी अभिलाषा बनी ही रहती है।

यह बात तो महादुःखपूर्ण जीवन पर कही जाती है। यदि मनुष्य-जीवन में सुख-ही-सुख होता, तब तो न जाने मनुष्य क्या कहता?

बुद्धिमानों को चाहिये, कि वे इस जीवन को तुच्छ समझें। ज़रा भी अहङ्कार न करें। इस थोड़े से जीवन में, संसार के झूठे झगड़ों में न फँसकर, ब्रह्म-ध्यानमें लीन रहें, जिससे फिर आवागमन का कष्ट न भोगना पड़े—बारम्बार नरक और स्वर्ग न भोगने पड़ें। जन्मना और मरना बहुत कष्टप्रद है। उस से बचने के लिये, इस मनुष्य-जन्म से लाभ उठाना चाहिये; क्योंकि यह बार-बार नहीं मिलता। न मालूम ऐसा अवसर फिर कब मिले? इसलिये जो क्षण मिलें, उन्हें परमात्मा की ही याद में बिताना अच्छा है। कबीर ने कहा है—

पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहा सोय।
एक पहर हरि ना भज्यो, मुक्ति कहाँ ते होय॥
धूम धाम में दिन गया, सोचत होगई साँझ।
एक घरी हरि ना भजा, जननी जनि भई बाँझ॥
रात गँवाई सोय के, द्यौस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल है, कौड़ी बदले जाय॥

आपको खूब समझ लेना चाहिये, कि यदि आप बालबच्चों के लिये रोटी और कपड़े की फिक्रमें लगे रहोगे, तो आप को आगे भयानक दुःख झेलना होगा। आपको आगेकी सफर बड़ी लम्बी है। यह तो एक बीच का मुकाम मात्र है। उस आगे की लम्बी यात्रा के लिये प्रबन्ध अवश्य कीजिये। जो लोग उम्र-भर गृहस्थी के झञ्झटों में भूले रहे, उनका अन्त भला नहीं हुआ—येही झगड़े तो स्वर्ग की प्राप्ति अथवा ईश्वरदर्शन में बाधक हैं। महात्मा शेखसादी ने कहा है—

ऐ गिरफ़्तारे पाये बन्दे अयाल।
दिगर आज़ादगी मबन्द ख़याल॥१॥
ग़मे फ़रज़न्दो नानो जामओ क़ूत।
बाज़त आरद ज़े सेरदर मलकूत॥२॥

ऐ औलाद की मुहब्बत में गिरफ़्तार रहनेवाले, तू किसी तरह भी बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता। सन्तान, रोटी, कपड़ा तथा जीविका की फिक्र तुझे स्वर्ग की चिन्तना से रोकती है। इसलिये "सब तज, हर भज।"

अगर भगवान् कृष्णके कथनानुसार संसारके काम-धन्धे किये जायँ, तोभी हर्ज नहीं ; पर मनको एकमात्र परमात्मा में रखना चाहिये। काम करते रहने और मन उसमें रखने से भी सिद्धि मिल सकती है। महाकवि रहीमने कहा है—

जो "रहीम" मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं ।
जलमें जो छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥

सारा दार मदार मन पर है। व्यभिचारिणी स्त्री घरके धन्धे किया करती है, पर मन हर क्षण अपने यार में रखती है। गाय घास चरा करती है, पर मन अपने बच्चेमें रखती है। स्त्रियाँ धान कूटती हैं, तब एक हाथसे मूसल चलाती हैं, दूसरे से ओखलीके धान को ठीक करती जाती हैं। इसी बीचमें यदि उनका बच्चा आजाता है, तो उसे दूध भी पिलाती जाती हैं; किन्तु उनका ध्यान बराबर मूसलमेंही रहता है। अगर ज़रा भी ध्यान टूटे तो हाथके पलस्तर उड़ जायँ। इसी तरह मनुष्य, संसारके काम करता हुआ भी, यदि ईश्वरमें दिल लगाकर उसकी भक्ति करता रहे, तो कोई हर्ज नहीं। पर इस तरह संसारमें रह कर सिद्धि लाभ करना है बड़े शूरवीरों का काम।

अनेक लोग दिखाऊ साधु बन जाते हैं। सब ढोंग महात्माओंका सा करके अपने तईं पुजाते हैं, चेलोंसे भेंट लेते है, नवयौवनाओं को पास बैठाकर उपदेश देते हैं, रुपये और गिन्नियोंके ढेर अपने सामने लगवाते हैं। भला ऐसों का मन परमात्मामें लग सकता है? हमारी समझ में तो वे एक प्रकार के दूकान्दार-साधु हैं। ऐसों ही के सम्बन्धमें महात्माओंने कहा है—

तन को योगी सब करें, मनको बिरला कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन योगी होय॥
जाके उर बर बासना, भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि बिड़म्बना, केहि बिधि कथहि प्रमान॥
काह भयो बन बन फिरे, जो बनिआयो नाहिं।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घरही माँहि॥
रामचरण परचै नहीं, बिन साधन पद नेह।
मूँड मुँडायो बादिही, भाँड भये तजि गेह॥
कीर सरस बाणी पढ़त, चाखन चाहत खाँड।
मन राखत बैराग महँ, घरमें राखत राँड॥
जहाँ काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी दोनहुँ नहिं मिलें, रवि रजनी इक ठाम॥
तबलगि योगी जगत-गुरु, जबलगि रहै निरास।
जब आशा मनमें जगी, तब गुरु योगी दास॥

ऐसे योगी बनने से तो गृहस्थ रहना ही भला। क्योंकि दिखाउ और बनावटी काम सदा दुःखदायी होते हैं।

छप्पय।

शताहि वर्ष की आयु, रात में बीतत आधे।
ताक्यो आधे आध, वृद्ध बालकपन साधे।
रहे यहै दिन, आधि व्याधि गृह काज समाये।
नाना विधि बकवाद करत, सबहिन कों खोये।

जलकी तरंग बुदबुद सदृश, दहे सेह ह्वै जात है।
सुख कहो कहाँ इन नरनकों,जासों फूलत गात है ॥१०७

107. The average longevity of a man is estimated at hundred years. Half of it passes away in nights. Of the remainder one portion is spent in childhood and another in old age. What finally remains is led with hardship caused by disease and separation in other people's service etc. Where is the happiness for living beings in a life which is as restless as the currents of water ?

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं
यन्मुंचंत्युपभोगकांचनधनान्येकांततो निःस्पृहाः॥
न प्राप्तानि पुरा न संप्रति नच प्राप्तौ दृढप्रत्ययो
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्तावयम्॥१०८॥

उन बुद्धिमान, निर्मल ज्ञानवाले, ब्रह्मज्ञानियों का कठिन व्रत देख कर हमें बड़ा विस्मय होता है, जो विषय भोग, धन दौलत, सोना चाँदी, स्त्री पुत्र प्रभृति को एकदम से त्याग देते हैं और फिर उनकी इच्छा नहीं रखते ।।१०८॥

सत् और असत्‌का विचार करनेवाले, देह और आत्माको अलग-अलग समझनेवाले, इस संसार को

स्वप्नवत मानलेवाले, इस जगत् की झूठी चमक-दमक पर मोहित न होनेवाले पुरुष "ज्ञानी" कहलाते हैं। जिनके सामनेसे माया का पर्दा हट जाता है, उन्हें परमात्मा दीखने लगता है, उन्हें परमात्माके ध्यानमें जो आनन्द आता है उसकी बराबरी त्रिभुवन के सारे सुखैश्वर्य भी नहीं कर सकते। ऐसे ज्ञानी इस जगत् से नाता क्यों जोड़ने लगे? जब तक उन्हें ज्ञान नहीं होता, मायाका पर्दा उनकी आँखोंके सामने से नहीं हटता, तभी तक वे इस संसारी जालमें फँसे रहते हैं; जहाँ उन्हें ज्ञान हुआ, जहाँ उन्होंने इसकी असलियत समझी, वहाँ फौरन ही इसे छोड़ा। एकबार छोड़ कर, फिर इसकी इच्छा इसलिये नहीं करते, कि वे समझ-बूझ कर इसे छोड़ते हैं, ज़बर्दस्ती या किसीके बहकाने से अथवा दूकान्दारी के लिए तो वे इस छोड़ते ही नहीं, जो उनकी लालसा इस में बनी रहे। प्रत्येक मनुष्यको समझना चाहिये कि, यह संसार वास्तव में ही जाल है। यहाँ कोई किसीका नहीं है। सब अपना-अपना मतलब गाँठते हैं। मतलब नहीं, तो कोई किसीका नहीं। तुलसीदासजी कहते है—

> तुलसी स्वारथके सगे, बिन स्वारथ कोई नाहिं।
> सरस वृक्ष पंछी बसें, निरस भये उड़ जाहिं॥

सभी स्वारथके सगे हैं, बिना स्वारथ कोई किसी का नहीं है। जबतक वृक्षमें फल रहते हैं तभी तक पंछी उस

पर रहते हैं, जहां वृक्ष फलहीन हुआ, कि वे उसे छोड़कर और जगह उड़ जाते हैं। यही हाल संसार का है। सब घड़ी दम का मेला है। जीते जीके सब साथी हैं, मरते ही सारी मुहब्बत उड़ जाती है। जो स्त्री अर्द्धाङ्गी कहलाती है, जो पुरुषको अपना प्राणप्यारा कहती है, गले से लगाती है, उसके लिये जान देने को तैयार रहती है, वही दम निकलतेही उससे डरने लगती है। अगर वह रोती भी है, तो अपने सुखोंके लिए रोती है, उसके लिए नहीं रोती। और कुटुम्बी माता-पिता बहिन भाई इत्यादि सभी दम निकलतेही कहने लगते हैं,—"जल्दी उठाओ, अब घरमें रखना ठीक नहीं।"

महात्मा सुन्दर दासजी कहते हैं—

मात पिता युवती सुत बान्धव।
लागत है सब कूँ अति प्यारो॥
लोक कुटुम्ब खरो हित राखत।
होइ नहीं हमतें कहुँ न्यारो॥
देह सनेह तहाँ लग जानहु।
बोलत है मुख शब्द उचारो॥
सुन्दर चेतन शक्ति गई जब।
वेगि कहैं घर बार निकारो॥१॥
रूप भलो तबही लग दीसत।
जौं लग बोलत चालत आगे॥

पीवत खात सुनै और देखत।
सोइ रहै उठि कै पुनि जागै॥
मात पिता भइया मिलि बैठत।
प्यार करौ युवती गल लागै॥
सुन्दर चेतन शक्ति गई जब।
देखत ताहि सबै डरि भागै॥

जिस संसारकी ऐसी गति है, उसपर मूर्ख ही भूलते हैं, अज्ञानी ही उसके जालमें फँसते हैं। जो दाना और समझदार हैं, वे इसके जालमें नहीं फँसते। अगर फँस भी जाते हैं, तो सबको छोड़छाड़कर अलग होजाते हैं। जितने विद्वान् और महात्मा हुए हैं, सभी ने यही कहा है—"इस संसार के साथ दिल मत लगाओ; इसके बनाने वालेके साथ दिल लगाओ। उसी में आपकी भलाई है।"

दोहा।

बड़े विवेकी तजत हैं, सम्पति सुत पितु मात।
कन्था और कोपीन हूँ, हम से तजी न जात॥१०८॥

108. How wonderful is the action of those wise in the knowledge of *Brahma* and pure of reason, who renounce altogether, without any further desire to regain them the pleasures of life, gold and all other

objects of wealth! We neither possessed such things before, nor do we possess them now, nor is there any certainty of getting them hereafter, still we are unable to give up even the desire for obtaining them.

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥१०८॥

वृद्धावस्था भयङ्कर बाघिनी की तरह सामने खड़ी है रोग शत्रुओं की तरह देह पर आक्रमण कर रहे हैं, आयु फूटे हुए घड़े के पानी की तरह निकली चली जा रही है। आश्चर्य की बात है, फिर भी लोग वही काम करते हैं, जिस से उनका अनिष्ट हो ॥१०८॥

बुढ़ापा मौतका पेशखीमा है। बुढ़ापेसे ही चतुर लोग समझ लेते हैं, कि कालकी लेनडोरी आरही है। अब शीघ्रही वह स्वयं तशरीफ़ लानेवाले हैं। किन्तु अज्ञानी इस बात को नहीं समझते, इसलिए इस चला-चलीके समय में भी वे संसारके मोह और धन-दौलत के बटोरनेमें मग्न रहते हैं। आँखों से देखते हैं, कि बड़े-बड़े करोड़पति, अरब-खरब के स्वामी अपना सारा धन-दौल[illegible] यहाँ तक कि ससागरा पृथिवी का राजपाट छोड़

चले जारहे है ; फिरभी उन्हें चेत नहीं होता ; इसी बेहोशी—ग़फ़लतके कारण मनुष्य सदाके लिये भवबन्धनमें बँधता है । कम-से-कम इस उम्रमें तो परलोक बनाने के काम करनेही चाहिएँ—सुन्दरदासजी कहते हैं—

यौवन को गयो राज और सब भयो साज ।
अपनी दुहाई फेरि दमामो बजायो है ॥
लुकुटी हथ्यार लिय नैन कर डाल दिये ।
श्वेत बार भये ताके तम्बू सों तनायो है ॥
दशन गये सु दरबान दूरि किये ।
जो घरी परी सो आन बिछानो बिछायो है ॥
शीश कर कम्पत सु सुन्दर निकारयो रिपु ।
देखत ही देखत बुढ़ापो दौरि आयो है ॥१॥

सन्त सदा उपदेश बतावत ।
केश सबै सिर श्वेत भये हैं ॥
तू ममता अजहुँ नहिं छाँड़त ।
मौतहु आइ सँदेस दये हैं ॥
आजु कि काल चले उठि मूरख ।
तेरेहि देखत केते गये हैं ॥
सुन्दर क्यूँ नहिं राम सँभारत ।
या जगमें कहु कौन रहे हैं ? ॥२॥

करत करत धन्ध कछुहि न जाने अन्ध ।
आवत निकट दिन आगले चपाकदे ॥

जैसे बाज तीतर कूँ दाबत है अचानक ।
जैसे बक मछरी कूँ लीलत लपाकदे ॥
जैसे मच्छिकाकी घात मकरी करत आय ।
जैसे साँप मूसक कूँ ग्रसत गपाक दे ॥
चेत रे अचेत नर "सुन्दर" सँभार राम ।
ऐसे तोहिं काल आय लेइगो टपाक दे ॥३॥

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब ।
मेरो धन माल मैं तो बहु विधि भारो हूँ ॥
मेरे सब सेवक हुकम कोउ मेटे नाहिं ।
मेरी युवती को मैं तो अधिक पियारो हूँ ॥
मेरो वंश ऊँचो मेरे बाप दादा ऐसे भये ।
करत बड़ाई मैं तो जगत उजारो हूँ ॥
"सुन्दर" कहत मेरो मेरो करि जाने शठ ।
ऐसे नाहिं जाने मैं तो कालहीको चारो हूँ ॥४॥

माया जोरि जोरि नर राखत जतन करि ।
कहत है एकदिन मेरे काम आइहै ॥
तोहि तो मरत कछु बेर नहिं लागी शठ ।
देखतहि देखत बबूलासो बिलाइ है ॥
धन तो धर्योही रहे चलत न कौड़ी गहै ।
रीते हाथन से जैसो आयो तैसो जाइ है ॥
करिले सुकृत यह बेरिया न आवै फिरि ।
"सुन्दर" कहत नर पुनि पछिताइहै ॥५॥

दोहा ।

कुपित सिंहिनी ज्यों जरा, कुपित शत्रु ज्यों रोग ।

फूटे घट जल त्यौं वयस, तऊ अहितयुत लोग ॥१०९॥

109. Old age stands in front like a ferocious-looking she-wolf. Diseases attack the physical body like so many enemies. Life is leaking away like water from a broken vessel. Still it is strange that men go on doing what will bring them harm in the end!

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥
तदपि तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः

ब्रह्मा की यह अज्ञानता खटकती है, कि वह मनुष्यको गुणोंकी खान, पृथिवी का भूषण, प्राणियोंमें रत्न-रूप बनाता है; किन्तु उसे क्षणभङ्गर कर देता है ॥११०॥

मनुष्य जीवधारियोंमें श्रेष्ठ, अशरफ़ुल मख़लूक़ात, गुणों का सागर और सृष्टिकी शोभा है। यह सब होने पर भी उसकी उम्र कुछ नहीं; वह पानी के बुलबुले की तरह क्षणभर में ही नाश हो जाता है। ब्रह्मा गुणों की खान—पृथिवी के शोभा रूप पुरुषको बनाता है, यह तो अच्छी बात है; किन्तु उसे क्षणभरमेंही नाश कर देता है

मनुष्य की वृद्धावस्था बड़ी खेदजनक है। शरीर काम नहीं देता, स्त्री सेवा नहीं करती—देखतेही आँखें निकालती है। पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं।

[पृ० २५२ श्लोक १११

यह दुःख की बात है! यह उसकी मूर्खता है! यदि वह पुरुष को सदा रहनेवाला—अमर—बनाता, तो अच्छा होता। इसमें उसकी बुद्धिमत्ता दीखती, क्योंकि अपने बाग़में आपही वृक्ष लगा कर, आप ही जल सींच कर और बढ़ाकर,अपने ही हाथोंसे कोई नहीं काटता। जो ऐसा करता है, वह मूर्खही समझा जाता है।

110. How painful is the lack of wisdom of *Brahma*, who creates man as a mine of all the good qualities, a gem among all creatures and the ornament of the universe, yet makes him perishable in a moment!

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्दृ-
ष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ॥
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते हा
कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोप्यमित्रायते ॥ १११ ॥

मनुष्य की वृद्धावस्था बड़ी खेदजनक है। इस अवस्था में शरीर सुकड़ जाता है, चाल मन्दी पड़ जाती है, दन्त-पंक्ति टूट कर गिर जाती है, दृष्टि नाश हो जाती है, बहरापन बढ़ जाता है, मुँह से लार टपकती है, बन्धुवर्ग बातोंसे भी सम्मान नहीं करते, स्त्री भी सेवा नहीं करती और पुत्र भी शत्रु हो जाते हैं ॥ १११ ॥

सचमुचही मनुष्यका बुढ़ापा बहुतही दुःखदायी है,

इस अवस्थामें मनुष्यका शरीरभी वैरी हो जाता है। अनेक रोग आ घेरते हैं। खाँसीके मारे रात चैन न दिन चैन। हरदम दम फूलता रहता है। दमका रोग ऐसा है कि, दमके साथ ही जाता है। दाँत अलग ही तकलीफ देते हैं, हरदम उँगली दाँतोंमें ही रहती है। उस्ताद ज़ौकने खूब कहा है और बिल्कुल ठीक कहा है—

जिन दाँतोंसे हँसते थे हमेशा खिल खिल।
अब दर्दसे हैं वही रुलाते हिल हिल॥ १॥
पीरी में कहाँ अब वह जवानी के मजे।
ऐ ज़ौक़ बुढ़ापे से है दाँता किल किल॥ २॥

दाँतोंके हिलने या बिल्कुल न रहने से सख़्त चीज़ें खाई नहीं जासकतीं। ज़रा भी सख़्त चीज़ दाँतों तले आनेसे दम निकलने लगता है। घरके लोग भले हुए, पैसा कमा कर रखा हो, तब तो मोहन भोग हलवा वगैरः मिल जाते हैं; नहीं तो बड़ी मिट्टी ख़राब होती है। पैरों से चला नहीं जाता, मन मार कर बैठ रहना होता है। अगर कहीं जाये बिना नहीं सरता, तो लकड़ी के सहारे जाते हैं। आँखों से नहीं दीखता। पढ़ना-लिखना बन्द होजाता है। चलते-चलते किसी से टक्कर हो जाती है, तो दूसरा कहता है—"अरे मियाँ! अन्धे हो क्या! सूझता नहीं!" कानोंसे सुनाई नहीं देता। पास बैठा हुआ आदमी मुँह सामने ही गाली क्यों न देता रहे?

अपने शरीरकी भी सेवा हो नहीं सकती, इसलिए शरीर और कपड़े गन्दे रहते हैं, लोग पास खड़े होनेसे घिन करते हैं। वही पुत्र जिसे बचपन में गोद में खिलाते थे; आप न खाते थे, उसे खिलाते थे; अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाते थे; लाड़ प्यार करते थे; पढ़ाने-लिखाने में शक्ति भर द्रव्य खर्च करते थे ; आप तंगी भोगते थे, उसे तंग-दस्त न होने देते थे; आप फटी धोती पहने फिरते थे, पर उसे बढ़िया धोती कुरता कहीं से भी चोरी-ज़ोरी न्याय-अन्याय से लाकर पहनाते थे, वही पुत्र अब मुँह से नहीं बोलता। उसकी स्त्री दिनभर गालियोंकी बौछार छोड़ा करती है। कहती है,—"बूढ़ा मरे तो संकट कटे।" पुत्रवधू तो पुत्रवधू—अपनी ख़ास अर्द्धांङ्गी ही देखतेही आँखें चढ़ा लेती है, हर वक्त खाँउ खाँउ करती रहती है। आलिङ्गन करना तो दूरकी बात है, अपने पास बैठाना भी बुरा समझती है। बीमारी आरामी में सेवा-शुश्रूषा करती-करती कहने लगती है—"अब तो तुम मरजाओ तो भला हो,मुझसे यह सब नहीं होता।" ऐसे-ऐसे हज़ारों दुःख खड़े हो जाते हैं। भगवान् किसी को बुढ़ापा न दिखावे।

रोगोंके मारे इस अवस्थामें भगवद्भजन भी नहीं होता। पहली अवस्थायें मनुष्य खेलकूद और भोग-विलासमें गँवा देता है। इसलिये अन्तमें यहाँ भी दुःख

और वहाँ भी दुःख रहता है। जिन्हें इन कष्टों से बचना हो, वे, हो सके तो बचपन में ही नहीं तो जवानीमें, जब शरीर सब तरह से ठीक हो, स्वास्थ्य अच्छा हो, पुण्य संचय करें और दुनियासे दिल हटानेका अभ्यास करते-करते इसे एक दम छोड़ कर, शान्तस्थान में जाकर, अपने बनाने वाले को याद करें।

भगवान्‌की कृपासे सब दुःख दूर होजाते हैं। जबतक मनुष्यको "अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे" का अनुभव नहीं होता, तभी तक दुःख व्यापते हैं। जहाँ मनुष्यने शरीर और आत्माको अलग समझा, दुःख-सुख प्रभृति का सम्बन्ध शरीरसे है आत्मा से नहीं, ऐसा समझा कि दुःख भागे। मौतका डर भी उन्हींको लगता है, जो शरीर और आत्मामें भेद नहीं समझते। जो इस बातको जानता है, कि शरीर नाशमान् है किन्तु आत्मा अमर और अविनाशी है, वह क्यों डरेगा? जो काम क्रोध मद मोह प्रभृति शत्रुओंको वश कर लेता है, वह सदा सुखी रहता है। जो इन घोर शत्रुओंका नाश नहीं करता, वह सदा दुखी रहता है। सर्व्वोपरि बात यह है, कि जो परमात्माकी शरणमें चला जाता है, उसको संसारी शोक-ताप सता नहीं सकते। भगवान् की शरण गये बिनाही मनुष्य दुःख भोगता है। उनकी कृपा होनेसे दुःख कहाँ? जो भगवान्‌को भूलता है, उसकी मछली

को भी दुर्गति होती है, जिसका जहाज वैरी होता है। जो—

स्वामी सीतानाथजी, तुम लग मेरी दौर।
तुलसी काक जहाज को, सूझत और न ठौर॥

कहता हुआ, उनपर सोलह आने विश्वास रखता हुआ, उनकी शरण में चला जाता है, चाहे वह पापी ही क्यों न हो, भगवान् उसपर दया करते हैं, उसे अपनी शरण में ले लेते हैं। उनकी कृपा होने से फिर शोक-ताप रोग-दुःख और शत्रु लाख कोस दूर भागते हैं। वे मनुष्य का कुछ भी अनिष्ट नहीं करसकते। गोस्वामी तुलसी दासजीने कहा है—

ज्यों जग वैरी मीनको, आपु सहित परिवार।
त्यों तुलसी रघुनाथ बिन, आपनि दशा बिचार॥
कोटि विघ्न संकट विकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसीबल नहीं कर सकैं, जो सुदृष्टि रघुनाथ॥

छप्पय।

भयो संकुचित गात, दन्तहू उखरि परे महि।
आँखिन दीखत नाहिं, वदन ते लार परत वहि॥
भई चाल बेचाल, हाल बेहाल भयो अति।
वचन न मानत बन्धु, नारिहू तजी प्रीति गति॥

यह कष्ट महा दियें वृद्धपन, कछु मुख सो नहिं कहि सकत।
निज पुत्र अनादर कर कहत, यह बूढ़ो योहीं बकत ॥११११

111. How pitiable is the old age of a man when his limbs begin to contract his gait becomes feeble, the rows of teeth are broken off, the eyesight is gone, deafness is on the increase, the mouth begins to give water, the relatives do not show respect even by word, the wife ceases to serve and even the sons become unfriendly.

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्णविभवः ॥
जराजीर्णैरंगैर्नट इव वलीमंडिततनुर्नरः
संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥११२॥

मनुष्य नाटक के ऐक्टर के समान है, जो क्षण-भर में बालक, क्षण में युवा और कामी रसिया बन जाता है तथा क्षणमें दरिद्र, और क्षणमें धनैश्वर्य्य-पूर्ण हो जाता है। अन्तमें बुढ़ापे से जीर्ण और सुकड़ी हुई खाल का रूप दिखा कर, यमराज के नगर को ओट में छिप जाता है ॥ ११२ ॥

महाराज भर्तृहरि जीने मनुष्यका नाटक के ऐक्टरसे खूब ही अच्छा मिलान किया है। सचमुच ही मनुष्य नाटक के ऐक्टरका सा ही काम करता है।

थियेटरमें देखते हैं कि एक ही ऐक्टर कभी बालक, कभी जवान, कभी बूढ़ा, कभी धनी, कभी निर्धन, कभी राजा, कभी फ़क़ीर, कभी साधु, कभी असाधु बन कर तरह-तरह के तमाशे दिखाता है और शेष में नाटक के पर्दे के पीछे छिप जाता है। इसी तरह मनुष्य तरह-तरह के रूप दिखा कर अन्त में मर जाता है।

छप्पय ।

छिन में बालक होत, होत छिनही में यौवन ।
छिन ही में धनवन्त, होत छिनही में निर्धन ॥
होत छिनक में वृद्ध, देह जर्जरता पावत ।
नट ज्यों पलटत अंग,स्वांग नित नये दिखावत ।
यह जीव नाच नाना रचत,निचल्यो रहत न एक दम ।
करकैं कनात संसार की,कौतुक निरखत रहत यम॥११२

112. A mnn is like a stage-actor. He is a child for a short space of time and then becomes young enjoying lustful pursuits. In one moment he is poor and in another the possessor of great wealth and power. Ultimately with limbs worn out with old age and a body covered all over with

wrinkles he makes his exit entering the metropolis of the god of Death.

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयनेवा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांतु दिवसा:
क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥ ११३ ॥

हे परमात्मा ! मेरे शेष दिन किसी पवित्र वनमें शिव शिव शिव रटते हुए बीतें, सर्प और पुष्पाहार, बलवान शत्रु और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थर की शिला, मणि और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनियों के समूहमें मेरी समदृष्टि हो जाय, मेरी यही इच्छा है॥११३॥

खुलासा—कोई विरक्त पुरुष परमात्मा से प्रार्थना करता है, कि मेरी मति ऐसी कर दे कि मुझे सर्प और हार, शत्रु और मित्र, पुष्प-शय्या और शिला, रत्न और पत्थर, तिनका और सुन्दरी स्त्री सब एक से दीखने लगें,। इनमें मुझे भेद न मालूम हो, मेरी समदृष्टि हो जाय। मेरा शेष जीवन किसी पवित्र वनमें शिव शिव शिव करते बीते।

सभी जीवोंमें ब्रह्म दीखने लगे। शत्रु-मित्र में भेद न मालूम हो, हर्ष-शोक, दुःख-सुख सब में चित्त एकसा रहे, तब योगसिद्धि हुई समझनी चाहिये। कबीरदास कहते हैं—

सम दृष्टि सतगुरु करी, मेरा भरम निकार।
जहां देखो तहां एक ही, साहबका दीदार॥
समदृष्टि तब जानिये, शीतल समता होय।
सब जीवनकी आत्मा, लखै एकसी सोय॥

समदृष्टि सतगुरु किया,भरम किया सब दूर।
दूजा कोई दीखे नहीं, राम रहा भरपूर॥

यही अवस्था सर्वोत्तम अवस्था है। इसीमें परमानन्द है। इसमें शोक-दुःख का नाम नहीं है; पर यह अवस्था उन्हीं को प्राप्त होती है, जिन पर जगदीश की कृपा होती है या जिनके पूर्व जन्म के सञ्चित पुण्यों का उदय होता है।

छप्पय।

सर्प सुमन को हार, उग्र वैरी अरु सज्जन
कंचन मणि अरु लोह,कुसुम शय्या अरु पाहन॥
तृण अरु तरुणी नारि,सबन पए एक दृष्टि चित।
कहूँ राग नहिं रोष, द्वेष कितहू न कहूँ हित॥
ह्वै हे कब मेरी यह दशा,गंगाके तट तप जपत
रस भीने दुलभ दिवस ये,बीतेंगे शिव शिप जपत ११३॥

113. O Lord, let my remaining days be now spent repeating the name of Shiva in

some holy forest, my sight making no difference between a serpent or a garland of flowers, between a powerful enemy or a friend, between a precious gem or an ordinary stone, between a bed made soft by flowers or a flat stone, and between a straw or a group of beautiful women.